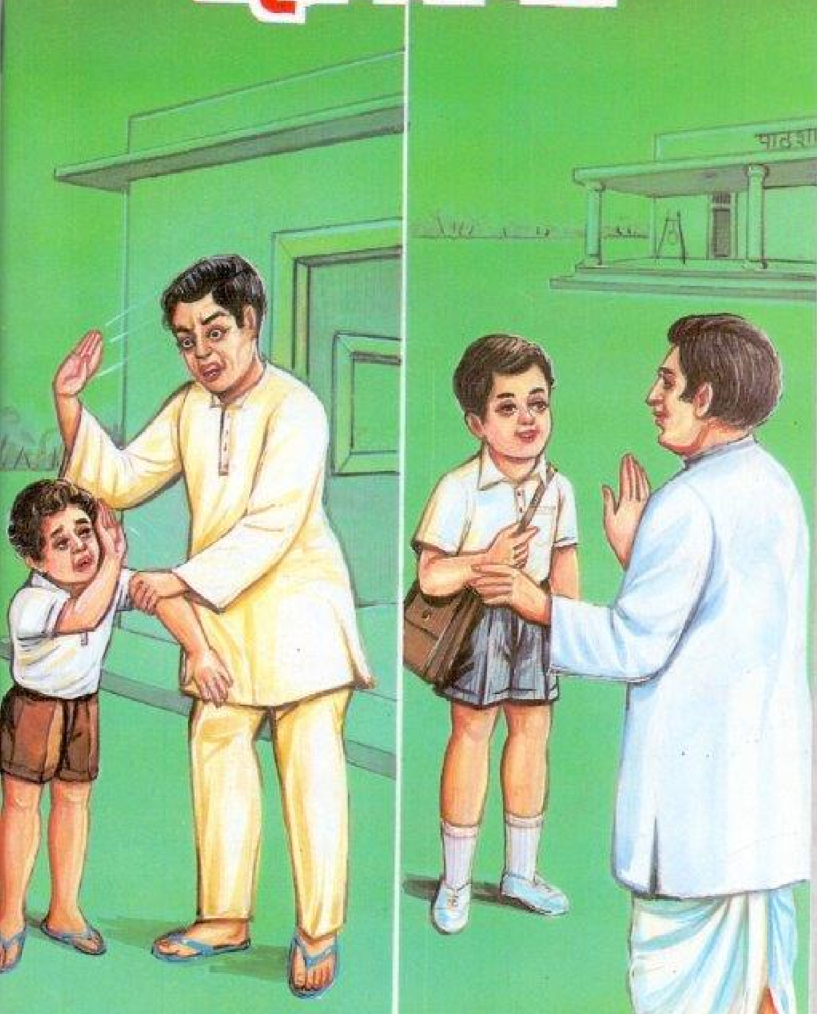
बच्चों के शासक नहीं सहायक बनें



बच्चों के शासक नहीं सहायक बनें

लेखिका :
भगवती देवी शर्मा

प्रकाशक :
युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट
गायत्री तपोभूमि, मथुरा
फोन : (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९
मो. ०९९२७०८६२८७, ०९९२७०८६२८९
फैक्स नं०- २५३०२००

पुनरावृत्ति सन् २०११ मूल्य : ९.०० रुपये

अध्याय

बच्चों के शासक नहीं सहायक बनें

अपने बच्चों का विकास प्रत्येक माता-पिता चाहते हैं, लेकिन यह आकांक्षा उस समय हानिकारक हो उठती है, जब वे बच्चे को शीघ्र समझदार बना डालने के लिए बेचैन होकर, सीख के नाम पर उस पर शासन करने लगते हैं । आवश्यकता इस बात की है कि वे बच्चे के विकास में सहायक बनें ।

ISBN
81-89309-02-1

बच्चों में अच्छी आदतें पैदा करें और बढ़ाएं

अभिभावकों, खासकर माता–पिता के ऊपर बच्चों में अच्छी आदतें डालने, उन्हें सुयोग्य बनाने का महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व है और सभी मां–बाप यह चाहते भी हैं कि उनके बच्चे योग्य बनें । किंतु बच्चों का निर्माण एक पेचीदा प्रश्न है । इसके लिए अभिभावकों में काफी विचारशीलता, विवेक, संजीदगी एवं मनोवैज्ञानिक जानकारी का होना आवश्यक है ।

बहुत से मां–बाप तो बच्चों को पैदा करने, खिलाने–पिलाने, स्कूल आदि में पढ़ने की व्यवस्था तक ही अपने उत्तरदायित्व की इतिश्री समझते हैं किंतु इससे बच्चों के निर्माण की संपूर्ण समस्या का हल नहीं होता, हालांकि बच्चों के विकास में इनका भी अपना स्थान है । बच्चों में अच्छी आदतें डालना, उनमें सद्‌गुणों की वृद्धि करके सुयोग्य बनाना एक महत्वपूर्ण बात है । यह असुरता से देवत्व उत्पन्न करने, पशुत्व को मनुष्यता में बदलने की प्रक्रिया है, एक सूक्ष्म विज्ञान है । बच्चों को प्यार करना, खिलाना, पिलाना, उसका संरक्षण करना तो पशुओं में भी पाया जाता है ।

बच्चों में बढ़ती हुई उच्छृंखलता, अनुशासनहीनता, स्वेच्छाचार एवं अन्य बुराइयों की जिम्मेदारी बहुत कुछ मां–बाप, अभिभावकों के ऊपर ही होती है । उनकी सामान्य–सी गलतियों, व्यवहार की छोटी–सी भूलों के कारण बच्चों में बड़ी–बड़ी बुराइयां पैदा हो जाती हैं । अनेक बुरी आदतें बच्चों में पड़ जाती हैं । स्वयं मां–बाप जिसे सुधार समझते हैं वही बात बच्चों के बिगाड़ने का कारण बन जाती है ।

बच्चों में अनुशासन और आज्ञापालन की आदत पैदा करने के लिए अधिकांश मां–बाप फौजी नियमों का पालन करते देखे जाते हैं । किसी भी काम के लिए अधिकारपूर्वक बच्चों को आदेश देते हैं । रौब दिखाकर, दबाव के द्वारा उनसे कोई काम कराना चाहते हैं । कदाचित उनकी बात पर बच्चों ने ध्यान नहीं दिया अथवा अनसुना कर दिया तो उनकी मारपीट करना, चीखना, चिल्लाना, गाली देना शुरू हो जाता है किंतु वे मां–बाप यह नहीं जानते कि इससे बच्चों में विरोधी भावना, द्वेष बुद्धि घर कर जाती है और बच्चे जानबूझकर उपेक्षा टालमटोल करने वाले, किसी बात पर ध्यान

न देने वाले अनुशासनहीन और उच्छृंखल बन जाते हैं ।

किसी तरह की आज्ञा देते समय अथवा अनुशासन पालन की आदत के लिए यह जानना और समझना भी आवश्यक है कि बच्चा उस समय क्या कर रहा है । उदाहरणार्थ बच्चा अपने किसी दिलचस्प खेल में लग रहा है, एकाग्रता से पढ़ रहा है अथवा अपने बाल मित्रों के साथ खेलकूद में मस्त है तो ऐसे समय किसी तरह की आज्ञा नहीं देनी चाहिए । ऐसी स्थिति में प्रायः बच्चे आज्ञा नहीं माना करते । यदि उनके साथ जबरदस्ती और रौब दबाव का व्यवहार किया गया तो उनमें रूठने, चिल्लाने, मचलने की आदतें पड़ जाएंगी और फिर हर बात में बच्चे विपरीतता अर्थात् आज्ञा उल्लंघन, अनुशासनहीनता का परिचय देंगे ।

जब बच्चे मां के पास शान्त तथा स्वस्थ मानसिक स्थिति में हों तो उन्हें आवश्यकतानुसार आदेश दिया जाए और जहां तक बने उस आदेश को खेल मनोरंजन के रूप में अथवा कोई नवीनता में परिणत कर देना अधिक श्रेष्ठ रहेगा । आदेश भी रचनात्मक होने चाहिए 'अमुक करेगा', 'वह लावेगा', 'वहां जावेगा', आदि 'यह काम मत कर', 'वहां मत जाना', 'उसे मत छूना' आदि के रूप में नकारात्मक आदेश बच्चों में वैसा ही करने का कौतूहल पैदा कर देते हैं और वे उन्हें ही करने लगते हैं जिनके लिए मना किया जाता है ।

अनुशासन, आज्ञापालन से संबंधित बातों पर स्वयं बच्चों की राय लेना भी उत्तम होता है । इससे वे बड़े प्रसन्न होते हैं और तत्परता के साथ उनके लिए प्रयत्न भी करते हैं क्योंकि उन बातों में उनका भी एक अधिकारमय स्थान होता है । बच्चों को पुकारकर, दूर से चिल्लाकर कोई आदेश न दिए जाएं बल्कि नजदीक बुलाकर और अच्छा तो यह हो कि उनके पास पहुंच कर ही उनसे कोई बात कही जाए । इससे बच्चे उसके मूल्य, महत्व को समझेंगे और उसी तत्परता, तन्मयता से उस पर अमल करेंगे ।

अनावश्यक रूप से बच्चों को बार बार टोकना अच्छा नहीं । वैसे बच्चे स्वतः ही किसी काम पर अधिक नहीं टिकते । थोड़े समय में ही वे उससे विरत हो जाते हैं । टोकने से तो उनकी थोड़ी बहुत एकाग्रता, तन्मयता में विक्षेप पड़ता है । इतना ही नहीं आगे चलकर ऐसे बच्चे किसी भी काम पर एकाग्र एवं तन्मय नहीं हो पाते । अपने सामने आए हुए काम पर भी नहीं जम पाते, जिससे जीवन में अनेक असफलताओं का सामना करना पड़ता है ।

बच्चे को किसी खेल आदि से विरत करने के लिए सीधी निषेधात्मक आज्ञा नहीं देनी चाहिए । वरन् उनके साथ लगकर सुझाव एवं प्रस्ताव रूप में अपनी बात रखकर उन्हीं से ऐसा निर्णय कराना उत्तम होता है ।

बच्चों को दिए जाने वाले आदेश सरल एवं स्पष्ट भाषा में हों, साथ ही उनके साथ अपना प्रभावशाली वजन भी हो । किसी काम को करने की आज्ञा देने से पूर्व बच्चे से यह पूछना कि 'तुम अमुक काम करोगे' तो उससे 'ना' में ही उत्तर मिलेगा और किसी भी बात के लिए एक बार ना कह देने पर बच्चों से वह काम कराना और भी कठिन हो जाता है । बच्चों को आकर्षक एवं प्रभावशाली ढंग से आज्ञा देनी चाहिए । 'हमारा मुन्ना अमुक काम करेगा फिर वहां जाएगा । इसके बाद यह लाएगा' आदि । इस रूप में आदेश आकर्षक, रचनात्मक, प्रभावशाली, वजनदार होते हैं और वह काम बच्चों के लिए कौतूहल मनोरंजन के रूप में भी बदल जाता है ।

बहुत से मां–बाप बच्चों के लिए नियमित व्यवस्थित जीवन बिताने के लिए बड़े सख्त और रूखे नियम बना देते हैं किंतु इससे अनुकूल परिणाम प्राप्त नहीं होते । बहुत से बच्चे उन नियमों के अनुसार चलेंगे नहीं या जो थोड़ा बहुत नियम पालन करेगे उनकी मौलिकता, आत्मविश्वास की शक्ति कुंद हो जाएगी । अतः बच्चों पर नियम लादे नहीं जाने चाहिए वरन् स्वयं उन्हीं की राय को महत्व, प्रोत्साहन देकर बच्चों के खाने पीने, सोने–पढ़ने–खेलने आदि का समय निश्चित कर देना चाहिए । यदि किन्हीं नियमों के कारण बच्चों को किसी तरह की कठिनाई हों तो उन्हें सरल भी बना देना चाहिए । बच्चों को नियमानुवर्ती बनाने से पूर्व स्वयं मां बाप को भी नियमित और बंधा हुआ जीवन बिताना आवश्यक है । जो मां–बाप स्वयं अनियमित जीवन बिताकर बच्चों को नियमानुवर्ती बनाना चाहते हैं, वे भूल करते हैं । यदि बच्चे अभ्यासवश नियम पालन में कोई गड़बड़ी अथवा भूल करें तो उन्हें एकदम धमकाना नहीं चाहिए । बहुत बार एक–सी भूल करने पर कह देना चाहिए ।

केवल नियमादि बनाकर बच्चों पर कर्तव्य एवं जिम्मेदारी डालने से काम नहीं चलता । समय–समय पर बच्चों के साथ विचार विमर्श करना, उनकी बात पूछना, उनके कार्यक्रम जीवनक्रम आदि के बारे में दिलचस्पी प्रकट करना, अपनी सूझबूझ से बच्चों को नवीन तथ्यों का ज्ञान देना भी आवश्यक है ।

कई मां–बाप बच्चों को नंगा ही घूमने–फिरने देते हैं, किंतु यह आदत बुरी है । छोटे–छोटे बच्चे जब नंगे रहते हैं तो उनमें समय से पूर्व ही यौन भावना जाग्रत हो उठती है । माता–पिता को अपने अबोध, छोटे से बच्चों के समक्ष भी परस्पर प्रेम प्रदर्शन नहीं करना चाहिए । इससे बच्चों के अंतरमन पर सूक्ष्म प्रभाव पड़ता है । समझदार, बोध रखने वाले बालक तो यह सब देखकर आश्चर्य करते हैं । उनके लिए एक कौतूहल की बात हो जाती है और फिर बच्चे भी परस्पर वैसा ही करने का प्रयास करते हैं । बच्चों में फैलती हुई अपराध प्रवृत्ति यौन भावना–जन्य अपराधों के मूल में मां–बाप की यह भूल भी एक मुख्य कारण है । असमय में ही उत्पन्न यौन भावना को बच्चे गलत तरीकों से व्यक्त करते हैं । बच्चों के समझदार हो जाने पर तो उन्हें हमेशा अलग कमरे में अलग–अलग बिस्तरों पर सुलाना चाहिए । अभिभावकों को इस बात का पूरा ध्यान रखना चाहिए कि अपनी किसी भी चारित्रिक कमज़ोरी को भूलकर बच्चों के समक्ष प्रकट न होने दिया जाए ।

बच्चों में सद्‌गुणों, उत्कृष्ट आदतों की प्रतिष्ठापना के लिए स्वयं अभिभावकों को अपने आप में ही उनकी प्रतिष्ठापना करना आवश्यक है । अपना सुधार किए बिना बच्चों को सुधारने का प्रयत्न विडंबना मात्र है । स्वयं बीड़ी पीते हुए बच्चों को धूम्रपान न करने का उपदेश देना क्या भूल नहीं है ? बच्चों से जिन गुणों की आशा की जाए उन्हीं से सम्बंधित वातावरण भी सचाई से भरा हुआ होना चाहिए । दवा पिलाने, अस्पताल में फोड़ा चिरवाने अथवा इंजेक्शन लगाने के लिए बच्चों को बहाना करके या झूंठ बोलकर ले जाना, बच्चों को धोखा देना उनमें वैसी ही आदतें पैदा करना है । बच्चे फिर उन्हीं की बातों का अवलंबन लेते हैं । उन्हें फिर माँ–बापों की आदर्श भरी बातों में भी संदेह होने लगता है और उन्हें झूठ मानने लगते हैं ।

चोरी की आदत से बचने के लिए बच्चों को जब से अपने–पराए का ज्ञान होने लगे तभी से यह सिखला देना चाहिए कि बिना मांगे किसी की वस्तु लेना चोरी है । दूसरों की वस्तु बिना मांगे लेना एक बुराई और अपराध है । चोरी की आदत पड़ जाना बच्चों के लिए घातक है । चोरी से दरअसल बच्चे की मनचाही इच्छाएं शीघ्र ही पूरी हो जाती हैं । मां–बाप की सतर्कता से बच्चों में चोरी की आदत घर नहीं करती ।

छोटी उम्र से ही बच्चों में कोमल भावनाओं का विकास करना चाहिए । बच्चों में सह–भावना सबके हित का ध्यान रखने की वृत्ति पैदा करना मां–बाप के ऊपर ही है । जो मां–बाप दूसरों तथा अपने बच्चों के बीच व्यवहार करते समय कोई भेद–भाव नहीं रखते और न किसी तरह का दुराव छिपाव ही रखते हैं वे बच्चे अपना ही नहीं सबके अस्तित्व का एक साथ ध्यान रखते हैं । उनमें भेदभाव करने की भावना नहीं रहती ।

बच्चों में अनुकरण करने की महत्वपूर्ण प्रवृत्ति होती है । मां–बाप अभिभावकों का जीवन उसके लिए निकटमत और आत्मभाव से भरा हुआ प्रतीक, आदर्शों का केन्द्र होता है । इस तरह मां–बाप के ऊपर ही बच्चों के निर्माण का महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व है । मां–बाप अपने इस उत्तरदायित्व को समझें और प्रयत्न करें तो इन खिलते हुए कुसुमों में सद्गुण, सद्भावों, अच्छी आदतों, सदाचार, शील, पुरुषार्थ, साहस आदि का सौन्दर्य और सुगन्धि भर जाए और सामान्य से बच्चों में ही अनेक महापुरुष निकल सकते हैं । प्रकृति शरीर देती है किंतु मनुष्य उसे व्यक्तित्व, मनुष्यता देता है ।

बच्चे के भविष्य की रूपरेखा बचपन में ही निर्धारित की जाती है । अतः छोटी–छोटी बातों की जानकारी बचपन से ही उसे दी जानी चाहिए । हम जिन्हें छोटी बातें कहकर टाल देते हैं, उनका बच्चों के जीवन में बहुत महत्व होता है । हम बच्चों को नासमझ समझते हैं किंतु बच्चा हमारी हर गतिविधि को समझता है ।

बच्चा कुछ करता है, तो मां उसे डांट देती है । खाने–पीने, पहनने–ओढ़ने, खेलने की सभी चीजों के लिए बालक हठ करता है । बच्चा यदि कपड़े के सूटकेस के पास जाकर कहता है कि मैं तो वही शर्ट पहनूंगा, तो मां कह देती है कि वह तो बंदर ले गया । लेकिन बच्चा जानता है कि वह शर्ट इस सूटकेस के अंदर ही है । इसलिए वह रोता–चिल्लाता है । मां उसे डांटती और मारती है, किंतु कुछ देर बच्चे को रुलाने–चिल्लाने के बाद वह चीज मां उसे दे देती है । इसे बच्चा जान लेता है । वह हर चीज के लिए जिद करता है क्योंकि उसे मालूम है कि वह चीज उसे मिल ही जाएगी ।

ऐसी बातें अधिकांश घरों में पाई जाती हैं । जिसका परिणाम यह होता है कि बच्चे के हृदय में अपने माता–पिता के प्रति सम्मान की भावना कम हो जाती है । उन्हें ऐसा लगता है कि ये तो झूंठ बोलते हैं । बच्चे

समझ जाते हैं कि उनके रोने–चिल्लाने से उनकी चीज उन्हें मिल जाएगी। इसलिए वे हर समय ही इसी तरह जिद करते हैं और माता–पिता को उनकी बात माननी पड़ती है।

दो–तीन वर्ष तक बच्चों की इच्छाएं सीमित होती हैं किंतु बालक ज्यों ही ४–५ वर्ष का होता है तो उसकी इच्छाएं भी बढ़ जाती हैं, किसी भी वस्तु को देखकर बालक उसे मांगता है। आइसक्रीम वाले को देखकर आइसक्रीम की मांग करेंगे, मोहल्ले के बच्चों को देखकर उनकी चीजों की मांग करेंगे, कभी पैसे की मांग करेंगे। इस तरह हमारे सामने एक समस्या आ जाती है, क्योंकि वस्तु बेचने वालों को तो रोक नहीं सकते हैं। जगह पर किसी का बंधन नही है। अतः यदि शांत मस्तिष्क से विचार किया जाए तो यही निष्कर्ष निकलता है कि बच्चों को उनकी आयु वृद्धि के साथ ही साथ उन सभी बातों का शिक्षण दिया जाना चाहिए जो कि उनके जीवन के लिए उपयोगी हैं अन्यथा आगे चलकर माता–पिता तथा स्वयं बालक के जीवन में कठिनाई होगी क्योंकि वह फिजूलखर्ची बन जाएगा।

कई घरों में बच्चों को पैसे नगद दिए जाते हैं, वे इसलिए कि बच्चा उनका स्वयं के लिए उपयोग कर सके किंतु होता इसके विपरीत है। पिता जो पैसे बच्चे को देता है, मां उसे गोलक में रख देती है और गोलक मां के अधिकार में रहती है। बच्चा यदि पैसों की मांग करता है तो मां यह कह देती है कि बेटा! तुम्हारे पैसों की गोलक भर रही है, जब पूरी भर जाएगी तब देंगे और जब पैसे पूरे भर जाते हैं तब मां उन पैसों को निकाल कर स्वयं खर्च कर लेती है। जिन पैसों पर बच्चे का अधिकार था, उन पैसों का उपयोग वह नहीं कर सकता है–यह बच्चे के साथ धोखा है। बच्चे को पैसे इसलिए दिए जाने चाहिए ताकि वह प्रारंभ से ही स्वयं खर्च करना सीखे तथा स्वावलंबी बन सके। उसे प्रारंभ में ही यह अभ्यास सिखाना चाहिए कि हमारे पास जितनी चीज है उतने में ही हमें काम करना चाहिए।

बच्चे मीठी चटपटी चीजें खाने के बहुत शौकीन होते हैं। अतः किसी भी खोमचे वाले को देखकर उन्हें मांगते हैं, खोमचे वाले की मिठाइयों पर प्रायः मक्खियां बैठती हैं इससे मिठाई दूषित तथा विषाक्त हो जाती है, उसमें हैजे के कीटाणु पैदा हो जाते हैं जिन्हें खाने से मनुष्य के अंदर हैजे के कीटाणु पैदा हो जाते हैं तथा व्यक्ति अकाल मृत्यु का ग्रास बन जाता है। इस

तरह ये स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होती हैं । बच्चों को यह बात बतानी चाहिए कि ये तुम्हारे स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हैं । सबसे उत्तम तरीका यह है कि बच्चे की मनपसंद चीज घर में ही मां बनाकर दें, इससे बच्चे की इच्छा पूर्ति भी हो जाएगी और साफ सुथरी तथा ताजी वस्तु बच्चे को खाने के लिए मिल जाएगी । इस तरह बालक को हानि समझा देने पर बालक समझ जाता है फिर वह जिद नहीं करता है तथा खोमचे वाले के पास भी नहीं जाता ।

बच्चों को पैसे देते समय यह बता देना चाहिए कि पैसों का उपयोग किस तरह किया जाए । बच्चों को एक निश्चित योजना समझा देनी चाहिए कि इस बार पैसे इकट्ठे होने पर अमुक वस्तु खरीद लेना तथा अगली बार दूसरी चीज खरीद लेना, इससे बच्चों को प्रसन्नता भी होती है तथा उन्हें प्रोत्साहन भी मिलता है ।

प्रारंभ में बालक में इन आदतों को डालने में परेशानी होती है क्योंकि पड़ौस के बच्चों को जब बालक दिनभर खर्च करते देखता है तो उसका मन भी होता है कि वह भी खर्च करे, इसलिए माता–पिता के सामने जिद करता है किंतु इस कठिनाई को आराम से हल किया जा सकता है । उसके लिए हमें बचपन से ही बच्चे को जरा–जरा सी बातों के बारे शिक्षण देना चाहिए, इससे आगे चलकर हमें इस कार्य में परेशानी नहीं होगी ।

बच्चे बड़े जिज्ञासु प्रकृति के होते हैं । आस–पड़ोस के बच्चे जब एक बालक को इस तरह का कार्य करते देखते हैं तो उन पर भी इन बातों का प्रभाव पड़ता है और वे भी वैसे ही आचरण करने लगते हैं । इस कार्य में महिलाओं से हमें बहुत अधिक सहायता मिल सकती है क्योंकि उनकी स्वाभाविक आदत होती है कि वे इकट्ठी होकर या तो सास की बुराई करती हैं या फिर बच्चों की शिकायत । यदि वे इस समय को व्यर्थ की बातों में न गंवाकर उस समय का सदुपयोग करें और बच्चों के भविष्य के विषय में एक निश्चित प्रोग्राम बना लें तो इससे उन्हें भी लाभ होगा तथा बच्चे भी उससे खुश रहेंगे और माता–पिता की परेशानी भी हल हो जाएगी ।

खाने–पीने संबंधी आदतों के साथ साथ बच्चों को कपड़े पहनने संबंधी जानकारी देनी चाहिए, उन्हें बताना चाहिए कि कौन से वस्त्र तुम्हें कब पहनने चाहिए । इसके लिए हमें दो आलमारी ऐसी तैयार करनी चाहिए जिनमें बच्चों के कपड़े दो प्रकार से रखने चाहिए । एक आलमारी

में रोज के पहनने योग्य कपड़े रखने चाहिए तथा दूसरी आलमारी में वे वस्त्र रखने चाहिए जो किसी विशेष अवसर पर पहने जाते हैं, इसकी जानकारी बच्चे को भली प्रकार दे देनी चाहिए । इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि आलमारी इतनी ज्यादा ऊंची न होवे कि बच्चे का हाथ उस ऊंचाई तक न पहुंच सके । इससे बच्चे का हाथ वहां तक नहीं पहुंचेगा तथा कपड़े निकालने में सारे कपड़े गिरकर बिखर जाएंगे, अतः इन सब बातों का विशेष ध्यान रखना चाहिए ।

बच्चे को सिखलाना चाहिए कि कपड़े किस तरह से रखें जाएं । शुरू–शुरू में बालक ठीक तरह से कार्य नहीं कर पाता है, ऐसे समय में माताएं बच्चे पर क्रोध करती हैं तथा उन्हें मारती हैं–यह तरीका उचित नहीं है । बल्कि हमें यह करना चाहिए कि ऐसे समय पर धैर्य से कार्य करें । बच्चे को सिखाएं कि किस तरह से काम करना चाहिए, क्योंकि आखिर यह बालक ही है इसलिए गल्तियां होना स्वाभाविक है । बच्चे के छोटे–छोटे हाथों से जितना होता है उतना कार्य तो वे करते ही हैं । धीरे धीरे बालक स्वयं ही सारे कार्य करने लगता है । इस तरह से यदि साहस और धैर्यपूर्वक काम लिया जाए तो किसी प्रकार की परेशानी भी नहीं उठानी पड़ेगी तथा बालक भी कार्य आसानी से सीख जाएगा । अतः हमें इस कार्य में शीघ्रता नहीं करनी चाहिए ।

इसके अलावा भी कई और बातों का शिक्षण बालक को देना आवश्यक होता है, जैसे सफाई से रहना, रोज नियत समय पर शौच–स्नान से निवृत्त हो कर सिर में तेल डालना तथा कंघी करने की जानकारी भी बच्चे को देनी चाहिए । तेल–कंघी इत्यादि एक स्थान पर सुव्यवस्थित ढंग से रख देनी चाहिए जहां से बालक सुविधापूर्वक उन वस्तुओं को उठा सके ।

इस तरह से यदि बालक को उचित आदतों का अभ्यास बचपन से ही करा दिया जाए तो आगे भविष्य में उसे अपने जीवन का समायोजन करने में कोई भी परेशानी महसूस नहीं होती है तथा उसका भविष्य उज्ज्वल तथा प्रकाशमय बन जाता है ।

मनुष्य अच्छाई और बुराई दोनों का पुतला है । त्रिविध प्रकृति, त्रिविध स्वभाव, त्रिगुण माया आदि शब्द उसकी इसी विशेषता की ओर ध्यान आकृष्ट करते हैं । हालांकि महत्व अच्छाइयों को दिया जाना चाहिए और उनके

विकास को ही प्रोत्साहित करना चाहिए । अपने आस पास के वातावरण का, आनुवंशिकता का, दूसरों की आदतों का प्रभाव लेकर ही मानव–शिशु अच्छी या बुरी बातें सीखता है और कभी कभी उसमें कुछ ऐसी अवांछनीय आदतें आ जाती हैं जिनसे माता–पिता को बड़ी उलझन होती है, जैसे मुंह बनाना, निरर्थक अंग हिलाना–डुलाना, अंगूठा चूसना, मुंह से नाखून काटना, अनावश्यक बात पर गुस्सा करना, जिद्द पकड़ना जैसी कई आदतें बचपन में पड़ती हैं जिन पर उसी समय ध्यान दिया जाना चाहिए ।

मनोविज्ञान–वेत्ता इन अवांछनीय आदतों का कारण बच्चों के मनोग्रन्थित समस्याओं को मानते हैं, जिन्हें बच्चे स्वयं नहीं समझते । बच्चे ही नहीं अभिभावक भी प्रायः उन्हें समझने में भूल कर जाते हैं और उन समस्याओं का हल करने की अपेक्षा तीसरे दर्जे के उपाय काम में लाने लगते हैं । उन आदतों को दूर करने के लिए वे धमकाने–डराने से लेकर मार–पीट तक करने लगते हैं । अंगूठा चूसने वाले बच्चों के अंगूठों पर माताएं मिर्ची लग देती हैं या दांत से नाखून काटने वाले बच्चों के दोनों हाथ पीछे बांध देती हैं इससे बच्चों का हित नहीं अहित ही होता है ।

बच्चों को डरा धमका कर, उन्हें दण्डित कर इन आदतों पर तात्कालिक रोक भले ही लगाई जा सके, पर उन आदतों के जो कारण हैं वे तो ज्यों के त्यों ही रहते हैं । उन मनोग्रंथियों का उपचार करने की अपेक्षा बच्चों का दमन करना, उनकी ग्रंथियों को और भी जटिल बना देता है ।

मानसिक और भावनात्मक कारणों से पड़ जाने वाली इन आदतों को छुड़ाने के लिए मनोवैज्ञानिक ढंग से ही प्रयास करना चाहिए । ऐसी अवांछनीय आदतों में अंगूठा चूसने की आदत को लिया जाए । हमारे देश में बहुधा माताएं किन्हीं कामों में व्यस्त रहने से बच्चों को स्तनपान न करा पाने के कारण खुद ही उनका अंगूठा उनके मुंह में दे देती हैं, इस प्रकार उसे एक काम में फंसाकर वह अपना काम करती रहती हैं । बच्चों को अपना अंगूठा चूसते हुए स्तनपान का आनंद मिलता है । दूध भले ही न आए पर उसकी समझ में यह नहीं आती । सीमित मानसिक क्षमता के कारण वह इसी को स्तनपान के समतुल्य समझने लगता है, उस समय तो इसमें कोई मानसिक उलझन नहीं रहती, पर उलझनग्रस्त बच्चे प्रायः चार वर्ष की आयु में अंगूठा चूसना आरंभ करते हैं । मनोविज्ञानवेत्ता इसका

कारण यह बताते हैं कि बच्चा अपने आसपास के वातावरण से असंतुष्ट है और वह अपने से ही अपने को तृप्त करने का प्रयत्न कर रहा है ।

ऐसी स्थिति में धीरज से काम लेने की आवश्यकता है । बच्चे को उसका महत्व बोध कराना चाहिए, किसी प्रकार उसे समझाना चाहिए—यह आदत खराब है और यह क्रिया छोटे बच्चे ही करते हैं । ज़ब उसे अपना महत्व—बोध होने लगता है, वह समझने लगता है कि मैं स्तनपान की उम्र को पार कर चुका हूं तो असंतोष की बनी हुई ग्रंथि अपने आप खुलने लगती है और वह वातावरण से अपने अनुसार समझौता शुरू कर देता है ।

दांत से नाखून काटने की आदत बड़े लोगों में भी पाई जाती है और बच्चों में भी, लेकिन इसकी जड़ें बचपन में ही प्रस्फुटित होती हैं । आकृति विज्ञान के ज्ञाता भी यह मानते हैं कि दांतों से नाखून काटने का स्वभाव व्यक्ति के हिंसक स्वभाव का परिचायक है । मनोविज्ञानवेत्ताओं का यह मत है कि बच्चे जब अपने आपको असुरक्षित अनुभव करने लगते हें तो वे इस आदत के शिकार होते हैं । सुरक्षा की अभावात्मक अनुभूति उन्हें आक्रामक और प्रति हिंसक बनाती है, लेकिन लज्जा, संकोच और झिझक की विवशता उनकी प्रवृत्ति को इसी प्रकार प्रवृत्त करती है—अभिव्यक्ति देती है ।

इसका एक कारण यह भी है कि बड़ों की भांति बच्चे में भी अपना प्रभुत्व जमाने की महात्वाकांक्षा होती हैं। शारीरिक, बौद्धिक और स्थितिगत कारण उसकी महात्वाकांक्षा पूरी होने में बाधक बनते हैं । किन्ही किन्ही बच्चों में विशेष रूप से प्रभूत्व जमाने की कामना रहती है । खास तौर से उनमें जो सुरक्षा के अभाव से ग्रस्त रहें हों और जब उनकी यह कामना पूरी नहीं होती है तो वे खीज कर दांत से नाखून काटना सीख जाते हैं ।

सामान्य दृष्टि से भी देखा जाए तो नेलकटर या चाकू ब्लेड से नाखून काटने की अपेक्षा दांत से नाखून काटना क्यों अच्छा लगता है ? सीधा सा उत्तर है—सहज रास्ता तलाश करना, श्रम से बचना और ये सब प्रयत्न की, सुरक्षा के अभाव की अनुभूति बन जाती हैं ।

अतः बच्चों की यह आदत छुड़ाने के लिए उन्हें दांत से नाखून काटने से रोकने की अपेक्षा उनमें आत्मविश्वास उत्पन्न करते हुए यह बात समझाई जानी चाहिए । सुरक्षा और आत्म विश्वास के अभाव में बच्चा दूसरों से घृणा भी करने लगता है । यह प्रवृत्ति उनमें तब जन्मती है जब हम उसकी

उपेक्षा करते हुए दूसरे बच्चों को अधिक प्यार करते हैं । आठ–दस साल के बच्चों को एकदम प्रौढ़ या समझदार मानकर उनसे वैसा ही व्यवहार नहीं करना चाहिए जिसमें वे अपने प्रति घृणा अनुभव करें ।

दांत से नाखून काटने की आदत को रोकने के लिए सावधानी के तौर पर उनके नाखून अधिक बड़े न हो जाएं–इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए । उन्हें यह भी समझाया जा सकता है कि शरीर के अन्य अंगों को साफ–सुथरा रखने की तरह नाखूनों को भी स्वच्छ रखना चाहिए । दाँत से कटे हुए खुरदरे नाखून कितने भद्दे और कुरूप लगते हैं तथा यह आदत उनकी सुन्दरता को किस बुरी तरह नष्ट कर डालती है । ये सावधानियां तभी लाभदायी हो सकती हैं जब बच्चे की समस्याओं–उलझनों को समझते और उनका निराकरण करते हुए बरती जाएं ।

बहुत से बच्चों में सोते–सोते पेशाब करने की आदत भी पड़ जाती है, छोटे बच्चे तो इस योग्य होते नहीं कि वे इस बात को समझ सकें और उन पर नियंत्रण रखा जा सके, पर बड़े बच्चों में कितने ही इस आदत के शिकार बन जाते हैं । इन आदतों के लिए जहां मानसिक प्रवृत्तियां जिम्मेदार हैं, वहीं शारीरिक कारण भी हैं । जैसे कोई बीमारी होना या रात को सोते समय पेशाब करके न सोना अथवा पेट में कीड़े पड़ जाना ।

मानसिक प्रवृत्तियों में ईर्ष्या और भय मुख्य कारण है । बच्चा जब देखता है कि माता–पिता, उसके छोटे भाई या बहिन को अधिक प्यार करते हैं और वह भी बिस्तर में पेशाब करता है तो वे प्यार पाने के लिए उसी की तरह हरकतें करने लगते हैं या वह यह प्रकट करना चाहता है कि वह भी अधिक प्यार किए जाने वाले छोटे बच्चे से किसी प्रकार कम नहीं है और हूबहू उसी तरह रह सकता है ।

दिन में अधिक डराए–धमकाए जाने, कोई भयानक सपना देखने या चौंक उठने के कारण भी बच्चा बिस्तर गीला कर देता है, पर वह रोज रोज की बात नहीं है । इस आदत को दूर करने के लिए स्वास्थ्य की जांच पड़ताल से लेकर उसकी मानसिक प्रवृत्तियों के अध्ययन की भी व्यवस्था रखनी चाहिए अन्यथा हम शारीरिक रोग समझते रहें और बच्चा किसी मनोग्रंथि का शिकार बनता जाए या हम उसके उपचार की व्यवस्था बनाने का प्रयत्न करें और बच्चे के शरीर में कोई रोग घर करता जाए ।

अब तक तो बच्चों की कुछ विशेष आदतों की चर्चा की गई, पर कई आदतें ऐसी हैं जो सामान्य रूप से किसी भी बच्चे में उत्पन्न हो सकती हैं या होती हैं । घृणा, ईर्ष्या, भय जैसे मनोविकारों की चिकित्सा तो बड़े वयस्क लोगों की भी नहीं की जा सकती, क्योंकि इन पर स्वयं के अतिरिक्त कोई दूसरा काबू नहीं कर सकता, पर जिद्द करना, झिझकना, अनावश्यक संकोच करना, लोगों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करने के लिए गलत सलत हरकतें करना तथा अशिष्ट व्यवहार करना आम बच्चों की समस्या है जो बड़े होने पर काफी हानिकारक हो जाती है ।

इन समस्याओं का हल खोजने से पूर्व पहले यह देख लेना आवश्यक है कि ये कमजोरियां कहीं हमारे माता-पिता में तो नहीं हैं, क्योंकि कमजोरी हो या विशेषता बच्चा अपने अभिभावकों से ही उत्तराधिकार में प्राप्त करता है । यदि ये दोष अभिभावकों में हों तो पहले अपने को सुधार कर बच्चों के सामने आदर्श उपस्थित करना चाहिए और उसके बाद बच्चों में उनका परिष्कार करना चाहिए । लेकिन देखा गया है कि माता-पिता में कोई दोष थोड़ा सा हो तो बच्चों में वह ज्यादा और भयंकर रूप में भी हो सकता है । वहां विवेकपूर्ण नियंत्रण किया जाना आवश्यक हो जाता है, जैसे किसी बच्चे में बुरी तरह गुस्सा करने की आदत है और वह आदत उसकी माँ या पिता में स्वाभाविक रूप से है तो उन्हें चाहिए कि वे बच्चों के परिष्कार का प्रयास करते हुए उनके सामने कम से कम क्रोध करें ।

जिद के रूप में क्रोध की मात्रा कमावेश सभी बच्चों में देखने को मिलती है । प्रारंभ में वह अपने ढंग से मांगने के रूप में ही होती है, परंतु जैसे ही उसे प्रोत्साहन मिलता है वह क्रोध का रूप धारण करता जाता है । जिद को कभी प्रोत्साहन नहीं देना चाहिए, जहां तक हो सके उसे परिष्कृत ढंग से जिद पूर्ति में निरुत्साहित ही करना चाहिए । जैसे उसे गंभीरता से न लिया जाए या उसकी हर उचित-अनुचित इच्छा को पूरा नहीं किया जाए । जिद को नहीं, उसकी इच्छा के औचित्य को ही महत्व दिया जाए ।

यदि उसे प्रोत्साहन मिलता है तो वह हर बात में नहीं करना सीख लेता है तथा आगे चलकर उद्धत अहंकारी बन जाता है। सामान्य रूप से जिद प्रखर इच्छाशक्ति का प्रतीक है । अतः उसे रचनात्मक दिशा भी दी

जा सकती हैं । जो बच्चें अपनी इच्छापूर्ति के लिए बहुत बुरी तरह अड़ जाते हैं, उन्हें दूसरे अच्छे कार्यों की ओर प्रेरित करना चाहिए ।

जिद के विपरीत कई बच्चों में झिझकने या अनावश्यक संकोच करने की प्रवृत्ति भी पाई जाती हैं । इसका सीधा सा उपाय है उन्हें बालोपयोगी कार्यों में व्यस्त कर दिया जाए । जैसे खेलने में लगाया जाए और कुछ साथी मित्र बनाने के लिए भी प्रोत्साहित किया जाए । झिझक या संकोच किन परिस्थितियों में पैदा होते हैं—यह जानना भी आवश्यक है । बच्चे प्रायः घर के लोगों केसामने नहीं झिझकते, पर किसी नए व्यक्ति या बाहर के आदमी के आते ही चुप हो जाते हैं । इससे स्पष्ट होता है कि वह अपरिचित के सामने ही झिझकता है । अर्थात वह अपने में किसी बात की कमी अनुभव करता है और उसे छुपाना चाहता है । अतः उचित है कि उसका परिचय क्षेत्र बढ़ाया जाए और उसमें आत्मविश्वास की भावना उत्पन्न की जाए ।

झिझक की तरह दूसरा गुण है—आत्म प्रदर्शन । यह आदत अपनी उपस्थिति जताने या बड़ों को प्रभावित करने की अदम्य आकांक्षा के रूप में जन्म लेती है । उन्हें दूसरों को अपनी ओर आकर्षित करने के उचित अनुचित उपायों का ज्ञान होता नहीं, अतः वे कोई भी उपाय अपनाने लगते हैं । स्वाभाविक चंचलता के कारण ऊधम मचाना या शरारत करना ही उन्हें अधिक रुचिकर लगता है ।

इस आदत का शिकार होने से बचाने के लिए बच्चों को कभी भी उपेक्षित अनुभव नहीं होने देना चाहिए । दूसरे रूपों में भी उनकी उपेक्षा कई प्रकार से हानिकारक है । अतः बच्चों को अकेलेपन का अहसास न होने देने के साथ-साथ उनका ध्यान रखते हुए उनकी प्रवृत्तियों को रचनात्मक दिशा देनी चाहिए । आत्म-समर्पण की भावना आत्माभिव्यक्ति के रूप में परिष्कृत ढंग से उभारी जा सके तो वह एक सद्गुण बन सकती है और बच्चों की अभिरुचि को समझकर उसे अपने क्षेत्र में आगे बढ़ने का प्रोत्साहन दिया जाए तो वे सचमुच प्रतिभावान सिद्ध हो सकते हैं, आगे चलकर कुछ करने योग्य बन सकते हैं ।

बच्चे परमात्मा के जागतिक उद्यान में मानवी पुष्प हैं । वे ठीक से खिलें, अपनी सुवास से वातावरण को महकाएं, इसका ध्यान रखना अभिभावकों का कर्तव्य है । इस कर्तव्य की पूर्ति में जरा भी ढील या

शिथिलता न आने देनी चाहिए और एक सुहृद साथी की तरह उनकी समस्याओं का हल तथा विकास का प्रयत्न करना चाहिए ।

वस्तुतः देखा जाए तो बालक में दुर्गुण जन्म से नहीं हुआ करते । वह तो बड़ा निश्छल और पवित्र स्वभाव का होता है । परंतु वह जैसे वातावरण में रहता है, माता–पिता और अभिभावकों का जैसा व्यवहार देखता है, वैसा ही स्वभाव और आदतें उसकी बन जाया करती हैं । यदि माता–पिता सद्गुणी और अनुशासित होंगे तो निश्चित है कि बालक भी वैसा बनने का प्रयास करेगा । बालक अनुकरणशील होता है । जैसा वह बड़े लोगों को करते देखता है, वैसा ही स्वयं भी करता है । अतएव यह अनिवार्य हो जाता है कि माता पिता जो बातें बच्चों को सिखाना चाहते हैं, उन पर खुद भी अमल करें । बालको को देखकर ही किसी प्रकार के स्तर और सभ्यता का पता लग जाता है । यदि किसी बालक में बुरी आदतें दिखाई देती हैं तो इस बात की बहुत अधिक सम्भावना रहती है कि उसके परिवार के व्यक्तियों में भी वहीं आदतें हों । यदि हम बच्चों को सच बोलने को कहते हैं तो यह तभी सम्भव है जब हम स्वयं भी सत्य बोलें । हम बालक को तो सत्य बोलने को कहें पर स्वयं उसके सामने जाने अनजाने झूंठ बोलें तो बालक की सत्य भाषण पर कभी भी आस्था नहीं होगी । उनकी दृष्टि से समय असमय झूठ बोलना कोई बुरी बात नही होगी क्योंकि स्वयं उसके अभिभावक, जिनका वह आदर सम्मान करता है, झूठ बोला करते हैं । कभी कभी ऐसा भी होता है कि माता–पिता बालक को सत्य बोलने को कहते हैं और स्वयं झूठ बोल जाया करते हैं । ऐसा करने से बालक की दृष्टि में उनका सम्मान कम हो जाता है । वह समझने लगता है कि ये स्वयं गलत करते हैं । बहुत से माता–पिता कहीं घूमने जाते हैं, सिनेमा आदि देखने जाते हैं, तो बच्चों को झूठ बोलकर बहला देते हैं बालक किसी वस्तु के लिए दुराग्रह करता है और माता–पिता उसे दिलवाना नहीं चाहते तो वे झूंठ बोलकर बालक को बहलाना चाहते हैं । यह प्रवृत्ति उचित नहीं है । बालक से सदैव सच बात कहनी चाहिए तथा प्यार से उसे समझाना चाहिए अन्यथा कभी कभी ऐसा भी होता है कि बच्चे के मन में माता–पिता तथा अभिभावकों के प्रति घृणा का भाव उत्पन्न हो जाता है ।

बच्चों में झूठ बोलने की आदत के कुछ मनोवैज्ञानिक कारण भी होते

हैं । कभी कभी ऐसा होता है कि बालक गलत कार्य करके सच्ची बात कह देता है तो बड़े लोग उसकी पिटाई करने लग जाते हैं परंतु यह उचित नहीं है । गलती पर बालक को मारना–पीटमा नहीं चाहिए अपितु फिर वैसी गलती न करने के लिए समझा देना चाहिए । यदि गलती को ठीक ठीक बता देने पर बालक की पिटाई की जाएगी तो उसके मन में यह बात जम जाएगी कि उसने सच बोलकर अच्छा नहीं किया । आगे से वह मार से बचने के लिए झूठ बोलना प्रारंभ कर देगा ।

माता–पिता को चाहिए कि न तो वे बच्चों को डराएं–धमकाएं और न ही उनके आगे असंभव बात कहें । बहुत सी माताएं छोटी छोटी बात पर बालकों को डराने लगती हैं जैसे–'चुपचाप सा जाओ नहीं तो भूत पकड़ ले जाएगा ।' 'जल्दी से दूध पी लो नहीं तो बिल्ली आ जाएगी ।' इस सबसे बच्चों के मन में डर के भाव बैठ जाते हैं । साथ ही जब वह देखता है कि बड़ों की बात सच नहीं होती, तो उन पर अविश्वास भी करने लगता है ।

इसी प्रकार बालकों में कुछ और भी गंदी आदतें पड़ जाती हैं, जैसे लड़ाई–झगड़ा करना, गाली देना, चोरी करना आदि । ये आदतें बच्चे बहुत कुछ हमसे सीखते हैं । जिस परिवार में पति पत्नी, सास बहू आदि छोटी छोटी बातों पर झगड़ा करते रहते हैं, उस परिवार के बालकों का भी स्वभाव झगड़ालू हो जाता है । कभी कभी देखा जाता है कि माता स्वयं दूसरे पारिवारिक व्यक्ति से वैमनस्य के कारण बालक को झगड़ा करने के लिए प्रोत्साहन देती है और बालक की प्रवृत्ति को खराब करने का कारण बनती है । बड़े व्यक्तियों का यह कर्तव्य हो जाता है कि वे अपने लड़ाई झगड़ों में कभी भी बालक को न घसीटें और जहां तक संभव हो उनके सामने किसी से कोई अनुचित बात न कहें । बड़े व्यक्तियों का एक दूसरे से गाली देकर बात करना भी बच्चों पर बुरा प्रभाव डालता है तथा वे बात बात में उन गालियों का प्रयोग करने लग जाते हैं । जिन बातों को हम बच्चों के मुख से नहीं सुनना चाहते उन्हें हमें भूलकर भी उनके सम्मुख नहीं कहना चाहिए । बच्चों में कभी कभी चोरी करने की गंदी आदत भी पड़ जाती है । इसका एक मुख्य कारण उन्हें छोटी छोटी एवं मनचाही चीजों से वंचित रखना है । जब बालक को घर में वस्तु उपलब्ध नहीं होती तो वह बाहर से वस्तु चुराकर लाने में भी नहीं झिझकता । माता पिता को चाहिए कि वे बालक को प्रत्येक

वस्तु दे दें । वह वस्तु जो बालक को देनी नहीं है, उसे घर में ही न लाया जाए तो उत्तम है । कभी कभी बच्चा अपने सहपाठियों के साथ रहकर भी चोरी करना सीख जाता है । माता समय समय पर बालक का स्कूल का बस्ता, सामान आदि का निरीक्षण करती रहे कि कहीं और बालकों की कोई चीज तो उसमें नहीं रखी है । यदि अन्य बालकों का कोई सामान उसमें रखा हो तो बालक को समझा बुझाकर कठोरतापूर्वक इस बात का निषेध कर दें जिससे उनकी यह आदत पनपने न पाए । ये तो हुईं प्रायः सभी बालकों की छोटी मोटी आदतें । कुछ बच्चों में कतिपय विशेष आदतें भी होती हैं जैसे–अंगूठा चूसना, बाल खींचना, नाखून काटना, तुतलाना, हकलाना आदि । माता पिता इन आदतों को तनिक भी अच्छा नहीं समझते तथा इन्हें दूर करने के लिए चिंतित हो उठते हैं और विविध प्रकार के प्रयास करते हैं । पढे–लिखे माता–पिता बालकों का विविध प्रकार से मनोविश्लेषण करते हैं तथा बालकों की इन आदतों के अधिक पनपने पर उन्हें मनोवैज्ञानिक के पास भी ले जाने का प्रयास करते हैं । परंतु मनोवैज्ञानिकों का कथन है कि बालकों को इन आदतों के लिए किसी प्रकार का दण्ड नहीं देना चाहिए और न ही उनकी विशेष चिंता करनी चाहिए । ये छोटी मोटी आदतें बालकों में स्वाभाविक होती हैं । इनके द्वारा वह अपने स्नायुविक एवं मानसिक तनाव को दूर करने का प्रयास करता है । बड़े लोग तो तनाव से मुक्त होने के अनेक मार्ग निकाल लेते हैं, परंतु छोटा बालक अन्य कोई रास्ता न पाकर इन आदतों को अपना लेता है । अधिकांश बच्चे धीरे धीरे इन आदतों को स्वतः ही छोड़ देते हैं । मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि इन आदतों के लिए जितना हम बालकों टोकेंगे, जितनी उनकी आलोचना करेंगे उनकी आदत छूटना उतना ही कठिन होता जाएगा । वस्तुतः इस विषय में बालकों को निर्देशन देने की उतनी आवश्यकता नहीं है जितनी कि अभिभावकों को चिंतामुक्त रहने की है । मनोवैज्ञानिक लिबोनाई गिलमैन ने अपनी पुस्तक ''इन्सोम्नियां एण्ड इट्स रिलेशन टू ड्रीम्स'' में बताया है कि प्रत्येक मनुष्य में दो प्रवृत्तियां होती हैं–आत्मरक्षण की प्रवृत्ति तथा आत्म–प्रचार की प्रवृत्ति । अंगूठा चूसना आदि क्रियाओं के द्वारा बालक अपनी दूसरी प्रवृत्ति की संतुष्टि करता है । यदि बालक की इस संतुष्टि में बाधा देने का प्रयास किया जाता है तो वह मानसिक संघर्ष की स्थिति में पड़ जाता है । अतएव माता–पिता को इन्हें बालक के

विकास में बाधक नहीं मानना चाहिए ।

कभी कभी ऐसा होता है कि बालकों की निरर्थक आदतों के पीछे भी कोई न कोई कारण मिल जाता है । उदाहरण के लिए अंगूठा चूसने को ही ले । कुछ बालकों की आदत होती है कि वे हर समय मुंह में अंगूठा डाले रहते हैं । प्राय: यह होता है कि बालक किसी कुण्ठा, ऊब, थकान, भूख आदि से छुटकारा पाने के लिए अंगूठा चूसता है । अतएव माता–पिता को चाहिए कि वे उसकी ओर थोड़ा अधिक ध्यान दें, प्यार से उसकी हीन भावना दूर करें । वातावरण को सरस बनाए रखें, बालक को अकेलापन अनुभव न होने दें । उसे पौष्टिक भोजन दें । समय पर सुलाएं, समय पर खिलाएं जिससे उसे अधिक थकान न हो । इन उपायों से ही कुछ दिनों में बालक का अंगूठा चूसना अपने आप दूर हो जाएगा । इसी प्रकार कुछ बालकों में दूसरों को काट खाने की या नाखून काटने की बुरी आदत पड़ जाती है । परंतु वह ऐसा तभी करता है जब कि घोर मानसिक निराशा या कुण्ठा का शिकार होता है । बड़ा बच्चा यह देखता है कि मां मुझे प्यार न करके छोटे भाई या बहिन को प्यार कर रही है, उसे ही गोद में खिला रही है तो द्वेषवश वह उसे काटकर अपने क्रोध की अभिव्यक्ति करता है । इस आदत को दूर करने के लिए माता को चाहिए कि वह सभी बालकों का समान रूप से ध्यान रखे, सभी को समान रूप से प्यार करे जिससे बालकों में बहिन–भाइयों के प्रति ईर्ष्या–द्वेष की भावना पनपे नहीं । यदि एक दूसरों को काटने की आदत किसी बालक में अधिक समय तक रहती है तो उसका अभिप्राय है कि वह किसी मानसिक विकृति से पीड़ित है । अतएव माता–पिता को उस विकृति के कारणों को भली भांति अध्ययन करते हुए, स्नेहपूर्वक उसे दूर करने का प्रयास करना चाहिए । बालक जब कोई बात कहता है तो उसे ध्यानपूर्वक सुनना चाहिए जिससे उसे आत्मतुष्टि मिले । बालक के व्यक्तित्व की कभी भी अवहेलना नहीं करनी चाहिए अपितु उसे पूरा सम्मान और महत्व देना चाहिए ।

इस प्रकार इन छोटी छोटी बातों का ध्यान रखकर बालकों में अच्छी आदतें डाली जा सकती हैं तथा उनके जीवन को श्रेष्ठ एवं सार्थक बनाया जा सकता है ।

यहां एक मध्यम वर्गीय परिवार के लिए उसकी औसत स्थिति व

अनुकूलता को ध्यान में रखते हुए एक आचार संहिता का बोध कराया जाता है जिसके अनुसार सभी के घरों के बच्चे यदि पालन करने लगें तो उनकी वर्तमान स्थिति की तुलना में कुछ अधिक प्रगति की संभावना परिलक्षित हो सकती है । यह आचार संहिता इस प्रकार प्रस्तावित है–

(१) दिनचर्या नित्य कर्म–प्रातःकाल सूर्योदय के पूर्व ही बच्चे, शैया त्याग कर दें । उठकर अपने बिस्तरों पर ही बच्चे हाथ जोड़कर अथवा बिना हाथ जोड़े मन ही मन भगवान की प्रार्थना करें । यह प्रार्थना अधिकाधिक ५–७ मिनट की हो सकती है । प्रार्थना किसी प्रकार की हो सकती है, पर उसका भाव यह रहना चाहिए कि हे परमपिता तूने हमें जन्म दिया है तू ही हमें ऐसी शक्ति दे कि हम आज अच्छे ही अच्छे काम करें, दुर्बलों एवं अभावग्रस्तों की सहायता करें, किसी को सताएं नहीं, विद्या व ज्ञान प्राप्त करें व अच्छे संस्कारवान् बनें, हम माता–पिता अन्य वृद्धजनों–गुरुजनों व समाज की सेवा करें ।

(२) माता–पिता को प्रणाम–प्रार्थना करने के उपरांत बच्चे अपने माता–पिता व अन्य वृद्धजनों (अपने से बड़ों) को प्रणाम करें ।

(३) ऊषा पान–बच्चों को मुंह साफ कर नित्य ही ऊषा पान करना चाहिए, रात को एक गिलास पानी भरकर रख देना चाहिए–संभव हो तो तांबे के पात्र में रात को पानी भर देना चाहिए, यह पानी पीने से विशेष लाभ होता है क्योंकि तांबे में एक प्रकार का विद्युत होता है व इसके संपर्क में आने से पिए जाने वाले पानी में भी वह विद्युत आ जाता है जो शरीर शुद्धि के लिए उपयोगी रहता है ।

(४) शौच, सफाई व स्नान–इसके उपरांत शौच निवृत्ति, दांत सफाई, मुंह धोना आदि की क्रियाएं की जानी चाहिए । आधुनिक सभ्यता के प्रसाद स्वरुप बच्चों में दांतों के ब्रुश से बाजार में मिलने वाले विभिन्न प्रकार के पेस्टों से दांत साफ करने की आदत हो गई है । प्रथमतः तो यह व्यय साध्य है द्वितीय यह विशेष लाभप्रद नहीं, अब विज्ञान के प्रयोगों से यह सिद्ध हो गया है कि इन पेस्टों में जो तत्व दांतों को साफ करता है वह 'क्लोरो फिझा' है, यह नील या बबूल की दातून में भी बहुतायत से होता है । बबूल की दतून करने से एक लाभ यह भी होता है कि उसका रस गले में जाने से बच्चों को सर्दी–खांसी आदि की बीमारी आसानी से नहीं हो पाती

।(दतून से दांत साफ किए जाएं या ब्रुश से अथवा और किसी से, आशय यह है कि नित्य ही दांतों की सफाई की जाती रहनी चाहिए) बच्चों को स्नान भी नित्य कराया जाना चाहिए । जहां तक संभव हो ठण्डे पानी से स्नान भी नित्य कराया जाना चाहिए, ठण्डे के डर से स्नान न करने की तुलना से गर्म पानी से भी नहा लेने में कोई हानि नहीं, परंतु यथासंभव ठण्डे पानी से ही नहाने की आदत डालना चाहिए । यह डर किसी ठोस आधार पर नहीं टिका है कि नित्य ठण्डे पानी के स्नान से बच्चों को सर्दी हो जाएगी, सर्दी स्नान से नहीं होती वरन् शरीर के अन्य अन्य विकारों एवं पेट की बीमारी कब्ज आदि से होती है ।

(५) व्यायाम, आसन, प्राणायाम—इसके बाद बच्चों के लिए यह अनिवार्य कर दिया जाना चाहिए कि नित्य ही कुछ न कुछ किसी न किसी प्रकार का व्यायाम अवश्य करें । घूमना, दौड़ना, दंड—बैठक, नियमानियम, योगासन, प्राणायाम, सूर्य नमस्कार आदि में से अपनी सुविधा व इच्छानुकूल कोई भी व्यायाम चुना जा सकता है । व्यायाम चाहे थोड़ा सा ही हो परंतु उसमें नियमितता व निरंतरता का ध्यान रखना चाहिए । वैसे सूर्य नमस्कार एक व्यायाम तो है ही इसे सूर्य की उपासना भी माना गया है ।

(६) नाश्ता—इसके बाद बच्चों को नाश्ता देने की (यदि नाश्ता देना घर वाले अनिवार्य ही समझते हों तो) बारी आती है । नाश्ते में बिना तली, मसाले की सुपाच्य चीजें दी जानी चाहिए । वैसे सबसे उत्तम नाश्ता ताजा दूध पिलाना ही होगा । उपासना के बाद नाश्ते की प्रथा डालना इस दृष्टि से उपयोगी रहेगी कि बच्चों में उपासना की आदत पक्की हो जाएगी तथा यह संस्कार भी पड़ेगा कि बिना भगवान की उपासना किए कुछ भी खाना पीना अच्छा नहीं रहता ।

(७) घर पर अभ्यास—इसके बाद बच्चों के कम से कम एक डेढ़ घण्टा घर पर अभ्यास अध्ययन करने के लिए अवश्य बैठना चाहिए ।

(८) शाला की तैयारी, भोजन एवं शाला—इसके बाद शाला जाने की तैयारी बच्चे करें । वस्त्र उनके साफ रहें, बाल सजे संवरे रहें, नाखून कटे रहें, पूरी पुस्तकें व लेखन सामग्री साथ रहे—यह ध्यान में रखना चाहिए । फिर बच्चों का भोजन होगा, भोजन में बच्चों को पुष्टिकर भोजन को पसंद करने के संस्कार डालना चाहिए, न कि स्वादिष्ट, भोजन स्वास्थ्य

प्रधान हो, न कि स्वाद प्रधान ।

(९) संध्या के खेल–बच्चों में यह आदत अवश्य डाली जाए कि वे संध्या समय कम से कम एक घण्टा अवश्य ही मैदान के खेल खेलें । खेल अपने आप में एक व्यायाम भी है व इनसे सामूहिकता का भाव बढ़ता है और बच्चों में सामाजिक संबंध बनाए रखने की स्वस्थ आदतें बनती हैं ।

(१०) वाचनालय–पुस्तकालय–बच्चों में यह संस्कार भी डाला जाना चाहिए कि वे नित्य ही अथवा नित्य संभव न हो सके तो अधिकांश कम से कम १ घण्टा या आधा घण्टा के लिए पुस्तकालयों–वाचनालयों में अवश्य जावें, वहां विभिन्न प्रकार की पत्र पत्रिकाएं देखें, पढ़ें व (अपनी रुचि की बातें डायरी में नोट करें) यह विचार ठीक नहीं कि घरों पर ही ढेर सारी पत्र पत्रिकाएं मंगाई जाएं व उन्हें पढ़ने के लिए दी जाएं । घर पर आने वाला साहित्य तो पढ़ा ही जाएगा, पर पुस्तकालय–वाचनालय से विज्ञान क्षेत्र विस्तीर्ण होता है तथा हमें वैविध्य ज्ञान मिलता है ।

(११) शयन–रात्रि को जल्दी ही अधिकाधिक १० बजे तक बच्चों को सुला देना चाहिए, बच्चों को जल्दी सोने व जल्दी उठने के लाभ समझाएं जाने चाहिए । सोते समय बच्चे हाथ मुंह साफ कर घुटनों तक पैर धोकर सोवें, सोते समय बिस्तर पर बच्चे फिर भगवान से इस तरह की प्रार्थना करें कि हे प्रभु ! तूने हमें जन्म दिया, आज का दिन हमें जीने के दिया, हमने आज अमुक अमुक अच्छे या बुरे कार्य किए, बुरे कामों को तू क्षमा करना ।

उक्त संहिता एक आदर्श के रूप में प्रस्तावित है, इसमें बच्चों की आयु, उनके शैक्षणिक स्तर, घर परिवार की परिस्थिति, वातावरण आदि को दृष्टिगत रखते हुए आवश्यक परिवर्तन किया जा सकता है । अधिक उपयुक्त तो यह होगा कि माता–पिता अपने बच्चों से इस संहिता पर विचार विमर्श करें व सब मिल–बैठकर एक सर्वमान्य संहिता निर्धारित कर उसका पालन करने का निश्चय करें, ऐसे बच्चे स्वयं यह भाव रखेंगे कि यह संहिता उनके माता–पिता ने उनकी सहमति से उनके हित में ही बनाई है । अतः इसका पालन करना उनके लिए कल्याणकारी ही होगा । जो बच्चे अपने माता–पिता को सहयोगी के रूप में पाते हैं, वे उनके परामर्शों का उत्साहपूर्वक पालन करने में ही गौरव एवं प्रतिष्ठा का अनभव किया करते हैं ।

साधारण आदतें तथा नियमित दिनचर्या

हम भारतवासी समय की पाबंदी न करने के लिए जगत विख्यात हैं। हमारे यहां का आना जाना, खाना–पीना, सोना–जागना, उठना–बैठना, सभा–सम्मेलन कोई भी ठीक तरह से नहीं होता। किसी नोटिस में यदि सभा होने की बात २ बजे लिखी हो तो निर्विवाद रूप से स्वीकार कर लेना चाहिए कि ४ बजे पूर्व वह प्रारंभ न हो सकेगी। किसी नेता जी के आने की सूचना यदि १२ बजे की है तो यदि वे २ बजे तक सभास्थल पर पहुंच जाएं तो उनकी शीघ्रता माननी चाहिए। भारतीय समय इसके लिए बदनाम हो चुका है। हमारा नाश्ता, भोजन और विश्राम भी ठीक समय से नहीं होता। करोड़ों में कोई एक–दो भले ही कह सकें कि मैं नित्य ८ बजे नाश्ता, ११ बजे भोजन करता हूँ रात्रि में १० बजे तक सो जाता हूँ। आज यदि ७ बजे कुछ खाया तो कल १० बजे, रात्रि में किसी दिन ९ बजे ही खाट ले ली तो किसी दिन बैठे १२ बजे तक गप्प लड़ाते रहे।

एक वाक्य में यदि कहा जाए तो यह हमारा जीवन पूर्णतया अनियमित है। इंग्लैण्ड और अमेरिकावासी समय की पावंदी का महत्व जानते हैं, वे अपने सब कार्य निर्धारित समय से करेंगे, उनका लंच–डिनर सब समय से होता है, परंतु हम भारतवसियों के लिए यह बात लागू नहीं होती है।

इसके लिए हम मूल्य भी चुकाते हैं, जीवन में समय के महत्व को न समझने और अनियमित दिनचर्या रखने के कारण हमारे बहुत से काम तो अधूरे पड़े ही रह जाते हैं, परंतु इसके साथ पेट भी खराब हो जाता है। जब चाहा, जितना चाहा ठूंसते रहने से उसका प्रभाव पेट पर पड़ता ही है।

जब हम स्वयं हर काम में समय की पावंदी नहीं करते तो भला बच्चों में इसकी आदत कैसे डाल सकते हैं ? प्रायः हर घर में बच्चे दिन भर खाया करते हैं। मैंने एक माताजी से पूछा–'आप अपने बच्चों को कितनी बार दूध पिलाती हैं ?' उन्होंने उत्तर दिया–'इसका हिसाब थोड़े ही है, जब भूख लगी तभी दूध पीता है।'

एक कानूनगो साहेब की इकलौती लड़की है, उसका नाम है–संध्या। संध्या सबको प्यारी है तो पर उसका मुंह कभी नहीं रुकता। परिवार के सभी प्राणियों के साथ वह अलग अलग बैठकर भोजन अवश्य करती है और

सबके साथ नाश्ता करती है, उसके खुद का भोजन और नाश्ता अलग । पिता या कोई जब बाहर से कुछ लाया तो मुंह चौबीस घण्टे बकरी की तरह चला करता है । यदि हम गणना करते तो शायद दिन भर में वह २० बार नाश्ता और १५ बार भोजन तो अवश्य करती होगी । अब उसके टट्टी जाने की आवश्यकता पड़ती है, सारा आंगन वह अपने मल.मूत्र से सजाया करती है । उसे देखकर दर्शन सोचने लगता है कि क्या संध्या जब बड़ी होगी तो उसे पेट की शिकायत न होगी ? क्या व चटोरे स्वभाव को छोड़ सकेगी ? इस अनियमितता का प्रभाव उसके भावी जीवन पर क्या पड़ेगा ? क्या उसके जीवन को नष्ट करने का दोष माता–पिता का नहीं, संध्या जैसे लाखों लड़के–लड़कियों की यही दशा रहती है ।

छोटे बच्चे के पारिवारिक जीवन का यदि पूरी तरह अध्ययन किया जाए और उस पर ध्यान दिया जाए तो हमारे मन में बच्चे तथा उसकी मां के प्रति करुणा का भाव उत्पन्न हुए बिना नहीं रह सकता । छोटे बच्चे को और तो कोई काम होता नहीं–वह या तो सोएगा, खाएगा या मां के गले चिपटा रहेगा । वैसे इन बातों के अतिरिक्त और किसी काम की आदत नहीं डाली जाती । वह बहुत कम अकेला लेटेगा या अकेला खेलेगा । वह जन्म के समय से ही मौसियों और बूआओं से घिरा रहता है जो उसे थोड़ी देर के लिए भी चारपाई या पालने पर आराम नहीं करने देतीं, मां का अपना चाव भी ऐसा होता है । वह बच्चे को गोद में लिए बैठी रहती है और चारपाई पर तो अपने साथ सुलाती है, वह कभी उसे कमरे में अकेला नहीं छोड़ती, कोई न कोई व्यक्ति सदा उसे बातों में लगाए रहता है ।

बच्चे को शुरू में जो आदत डाली जाए वह उसी को ग्रहण कर लेता है । तरुणाई और बुढ़ापे की अनियमित आदतों का श्रीगणेश इसी समय से होता है । जब मौसियां और बुआएं अपने अपने घर चली जाती हैं तो मांको घर के काम में अधिक व्यस्त रहना पड़ता है, इसलिए वह बच्चे की ओर अधिक ध्यान नहीं दे सकती । सास–ननदों और बहिनों के चले जाने के बाद मां को बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता है । वास्तव में जो बुरी आदतें बच्चे को शुरू के एक–दो महीने में पड़ जाती है वे कष्टदायी होती हैं । अब वह आराम से चारपाई पर लेटता नहीं, अकेला हो तो रोने लगता है, हर घड़ी मां की गोद से सवार रहता है । मां छः महीने तक इन बातों

को सहर्ष सहन करती रहती है, इसके अतिरिक्त शुरू में चाव भी बहुत होता है किंतु शीघ्र ही उसकी सहन शक्ति की सीमा आ जाती है। मां सोचती रहती है कि बच्चा जब घुटनों के बल चलना सीख जाएगा तब उसे अधिक तंग नहीं करेगा, किंतु मां की यह आशा पूरी नहीं हो पाती। जब बच्चा घुटनों के बल चलना, सीख जाता है तो वह और भी आसानी से अपनी मां के पास पहुंच जाता है, वह अब हर घड़ी मां के पास मौजूद रहता है। चलना फिरना सीख लेने के बाद उसे और भी आसानी हो जाती है और मां का कष्ट और भी बढ़ जाता है।

पहले एक दो महीने में उसे हम जो यह आदत डाल देते हैं कि वह अकेला नहीं रह सकता, यह आदत बाद में भी हम पकाते रहते हैं। दादी, नानी, मौसियों और बुआओं के चले जाने के बाद भी कई रिश्तेदार आते रहते हैं जो बच्चे को गोद में लेकर खिलाना अपना परम कर्तव्य समझते हैं। उनके अतिरिक्त अड़ौस–पड़ौस की बहुत–सी लड़कियां होती हैं जो आकर बच्चे को खिलाती रहती हैं, इन सब बातों का परिणाम यह होता है कि अकेला न रहने और चारपाई पर न लेटने की आदत बच्चे के अंदर पड़ जाती है। बच्चा जरा भी रोए तो उसे गोद में उठा लिया जाता है, बच्चे की यह आदत मां के लिए बड़ी कष्टदायक बन जाती है, क्योंकि उसे गृहस्थी के काम धंधों की ओर भी ध्यान देना पड़ता है। बच्चा यदि अपनी कोई बात मनवाना चाहे तो रोने लगता है। रोना उसके लिए एक हथियार का काम देता है, जिसकी सहायता से वह अपनी मनमानी पूरी कर सकता है। मां चाहे थोड़ी देर तक उसकी परवाह न करे किंतु अन्ततः पीछा छुड़ाने के लिए बच्चे के हठ के सामने सिर झुकाना ही पड़ता है। मां बहुधा यह कहती सुनी जाती है कि बच्चा बड़ा हठीला है, अपनी हठ पूरी किए बिना मानता ही नहीं है, किंतु इन आदतों के लिए मां स्वयं ही तो जिम्मेदार होती है। जब वह छोटा था तो ममता के कारण उसे लेटने या रोने नहीं दिया या छोटा होने के कारण उस पर तरस आ गया, किंतु इसका परिणाम यह हुआ कि बच्चे को ऐसी आदतें पड़ गईं जो अब नाराज होने, धमकाने या मारने पीटने से भी नहीं छूट सकतीं।

जिस चाव के साथ हम बच्चे की प्रतीक्षा करते हैं, यदि उतने ही चाव के साथ हम उसके जीवन को सीधे मार्ग पर चलाने का प्रयास करें तो वह

हमारे लिए इस तरह संकट का कारण न बने । हमने उसके भोजन के संबंध में कभी कोई उचित योजना नहीं बनाई, उसके कपड़ों की ओर कभी उचित ध्यान नहीं दिया, उसकी दिनचर्या के संबंध में कभी सोच–विचार से काम नहीं लिया । बच्चे के मातापिता ने कभी ठण्डे दिल से यह सोचने का प्रयत्न नहीं किया कि उनके बच्चे की भलाई किस बात में है । पिता अपने कर्त्तव्य की इतिश्री इतने में समझता है कि वह रुपया कमाकर ले आए और जो कुछ बच्चे की मां कहे वह बाजार से खरीदकर ला दे । यही कारण है कि मां बच्चों को एक संकट समझती है, क्योंकि वह सारा दिन काम देखे । जब बच्चा बड़ा होता है तो पिता उसके लिए खिलौने लाता है, किंतु जब बच्चा थोड़ा बड़ा हो जाता है तो पिता उसे धमकाने भी लगता है और कभी कभी बच्चे को पिता की मार भी खानी पड़ती है । जब मां बच्चे को स्वयं सीधा नहीं कर पाती तो वह उसकी सारी शिकायतें उसके पिता से करती है, पिता उसके लिए एक हव्वा बन जाता है जिससे वह सदा भयभीत रहने लगता है ।

हम बच्चे की बातों को अपने ही दृष्टिकोण और नापमानों से जांचते रहते हैं । हम यह भूल जाते हैं कि हमारे अंदर भी बचपन में यही इच्छाएं उत्पन्न हुआ करती थीं जो अब हमारे बच्चों में उत्पन्न हो रही हैं । इस समस्या का हल यह है कि बच्चे की इच्छाओं को बचपन के नापमान से नापा जाए और सदा बच्चों के व्यक्तित्व और भलाई को सामने रखा जाए । निःसंदेह हमें बच्चों को साफ सुथरा रखना चाहिए, किंतु हमें उससे यह आशा नहीं रखनी चाहिए कि वह सदा कुर्सियों पर बैठा रहे और नीचे फर्श पर उतर कर अपने कपड़े गंदे न करे ।

इसी तरह हमारी यह इच्छा होती है कि बच्चे हमें तंग न करें, किंतु इसका अर्थ यह नहीं होना चाहिए कि हम उनकी आवश्यकताओं और इच्छाओं की बिल्कुल परवाह न करें । यह ठीक है कि रोने वाला बच्चा हमें परेशान करेगा किंतु हमें यह न भूलना चाहिए कि केवल बीमार बच्चा ही सदा चुपचाप रह सकता है । हम चाहते हैं कि बच्चा हमारे कामों में हस्तक्षेप न करे और हम आराम के साथ अपने कामों में लगे रहें किंतु यह तभी हो सकता है जब उन्हें व्यस्त रखने का कोई उचित प्रबंध कर दें । छोटे बच्चे के लिए दूध पीना या सोते रहना यही दो काम नहीं हैं, उसके

विकास के लिए कई और चीजों की आवश्यकता होती है, उसके लिए कोई काम जुटाना हमारा कर्तव्य है । बच्चे केवल घर में ही तंग नहीं करते, वे बाहर भी, मंदिरों में, जलसों में, रेल या मोटर यात्रा आदि में तथा अन्य जगहों में भी तंग करते हैं, इसका कारण केवल यही होता है कि हम उन्हें न तो घर में व्यस्त रख सकते हैं और न ही हम उन्हें ठीक ढंग से बाहर ले जाना जानते हैं । यदि तुम शुरू में ही यह आदत डाल दो कि वह दिन में कुछ घण्टे मां के बिना रह सके तो बाद में हम उसे कई तरीकों से बहला सकते हैं । वह खिलौनों से खेल सके व अपनी आयु वाले साथियों के साथ खेल सकता है, चारपाई पर भी थोड़ी देर के लिए अकेला लेटा रह सकता है, किंतु बच्चे के लिए खुली और साफ सुथरी जगह का होना नितांत आवश्यक है । उसके साथ खेलने वाले उसके समवयस्क होने चाहिए, खिलौने ऐसे होने चाहिए जो उसकी आयु, उसके मानसिक स्तर तथा उसकी तबियत के अनुकूल हों ।

दिनचर्या—नियमित दिनचर्या बच्चे तथा उसकी मां दोनों के हक में सुविधाजनक और आवश्यक है । आरम्भ में जब बच्चा बोलना नहीं जानता उसकी आवश्यकताओं को समझने एवं दैनिक क्रियाओं को यथासमय करने का आदी बनाने के लिए यह आवश्यक है कि बच्चे में सोने—जागने, खोने पीने तथा खेलने कूदने का समय निश्चित हो । अभ्यास से बच्चा नियमित दिनचर्या का ऐसा आदी हो जाता है कि उसे यथासमय नींद आती है, खांने पीने के समय उसका पेट भूख से कुलबुला उठता है । सोकर उठने के बाद वह खेलने और बाहर जाने के लिए उतावला रहता है और पाचन क्रिया भी यथासमय भोजन हजम करने का काम कर नियमित समय पर मल रूप में निरर्थक वस्तु बाहर फेंकती है ।

नींद—आरंभ में बच्चा २०—२१ घण्टे सोता है, कमजोर बच्चों को स्वस्थ बच्चों से अधिक नींद की आवश्यकता होती है । आरंभ में केवल दूध पिलाने या स्नान के समय ही बच्चे को उठाएं, पर बच्चे को थपथपाकर या झुलाकर सोने की आदत न डालें । पलंग पर लिटाने के बाद मसहरी गिरा दें, ठंडक हो तो छाती तक उढ़ा दें परंतु इतना अवश्य ध्यान रखें कि बच्चे के कमरे में हवा आने जाने का प्रबंध पूरा हो । तीन चार मास के बाद आपको बच्चे की नींद का समय बांधने में आसानी होगी । वह रात्रि के

आठ बजे से प्रातःकाल छः बजे तक, पश्चात् सुबह की हवाखोरी के बाद आठ से लेकर नौ बजे तक और दोपहर में १२ बजे स्नान करके दूध पीकर तीन चार घण्टे तक सो सकेगा । उसकी नींद का ध्यान रखकर आप उसके दूध पिलाने का समय बांधें । प्रातःकाल साढ़े छः बजे सोकर जब बच्चा उठे तो पहली बार उसे सुसकार लें, अभ्यास से टट्टी-पेशाब का समय बंध जाएगा । कछ देर उसे पलंग पर खेलने दें, फिर उसका मुंह साफ करके, कपड़े बदल कर कुछ देर के लिए बाहर, पास के बगीचे में घुमाने अवश्य ले जाएं, साथ ही साथ आपकी भी हवाखोरी हो जाएगी । अगर ले जाने की सुविधा नहीं है तो किसी खिड़की के सामने उसका पालना कर दें, जहां प्रातःकाल की हवा और थोड़ी बहुत सूरज की किरणें भी उस पर पड़ सकें, खेलते-खेलते बच्चा कुछ समय के बाद आप ही सो जाएगा । इस प्रकार आपको सुबह का काम पूरा करने को दो घण्टे का अवकाश मिल जाएगा । बच्चा का पालना पास के कमरे में ऐसी जगह हो जहां से उसकी आवाज आपको झट सुनाई दे जाए अन्यथा अकेला बच्चा रो रो कर सहम जाता है और एकांत तथा अंधेरे में डरने लगता है ।

नहलाने का समय-साढ़े नौ बजे करीब बच्चे को दूसरी बार आप दूध पिलाएं, अगर सुबह से वह टट्टी नहीं गया है तो इस समय उसे सुसकारें, अब एक दो घण्टे बच्चा पालने में पड़ा खेलेगा । साढ़े ग्यारह बजे उसके बदन पर बुकवा-उबटन और तेल लगावें, कान, नाक, सिर में भी तेल लगावें, ग्लेसिरिन से उसका मुंह साफ कर दें । बुकवा लगाते समय उसको आप उलट पुलटकर लगावेंगी ही, फिर थोड़ी देर तक उसके बदन को थपथपाएं, हाथ पांव को मोड़ें, सहारा देकर बैठाने की चेष्टा करें, उल्टे सीधे लिटाएं, पकड़कर खड़ा करें । इस प्रकार वह अपने हाथ पांव मारकर व्यायाम करेगा । यदि ठंडक हो तो यह सब क्रिया हल्की धूप में बैठकर करना चाहिए, इसके थोड़ी देर के बाद उसे नहलाने का प्रबंध करें । स्नान क्रिया को मनोरंजन तथा सुविधाजनक बनाने की चेष्टा करें अन्यथा बच्चे को स्नान के प्रति अरुचि हो जाती है । नहलाने वाले की जल्दबाजी अथवा आंखों में साबुन की चिरमिराहट लगने या जोर जोर से रगड़ने से बच्चा घबरा जाता है अतएव छोटे बच्चे को अपनी गोद में आराम से लिटाकर नीचे एक खाली परात रख दें । साफ बाल्टी से पानी लेकर

उसका सिर, मुंह, आंख, कान, साफ करें तत्पश्चात मुंह आदि को पोंछकर बच्चे को सहारे से बिठाकर अथवा पकड़कर सारे शरीर में साबुन लगाकर गीले कपड़े से पोंछकर बाद में पानी डालें, सब अंगों तथा जोड़ों को हलके हाथों से मल–मलकर विशेष रूप से साफ करें, तत्पश्चात् बदन पोंछकर पाउडर लगाकर कपड़े पहना दें ।

बच्चा नहाने के बाद तुरंत नींद के झोंके खाने लगता है, दूध पीता–पीता ही वह सो जाएगा । नहाने के पश्चात् प्रायः बच्चा तीन घण्टा आराम से सोता है । शाम को जब उठने का समय हो तब उसके दूध का प्रबंध पहले से कर लें । अगर फलों का रस भी उसे पिलाती हों तो उसे भी पहले से तैयार रखें, ३ बजे के करीब बच्चे की मीठी नींद टूटेगी वह अंगड़ाई लेकर आंखें खोलेगा । आपकी आवाज सुनकर इधर उधर देखेगा, आपको देखकर मुस्कारकर हाथ ऊपर को उठा देगा । आप अपने लाल के इस स्वरूप को देखकर रीझ जाएंगी, उसे उठाकर सुसकार दें । बच्चे सोकर उठने के बाद अवश्य पेशाब करते हैं । अगर जाड़े या बरसा के दिन हैं तब तो बच्चे को साढ़े चार या पांच बजे ही घूमने भेज दें, परंतु गर्मियों में तो ठंडक होने पर ही बाहर भेजना ठीक है । सुबह–शाम की हवाखोरी बच्चे के लिए बहुत ही आवश्यक है । बच्चे बाहरी दुनिया से धीरे धीरे परिचित हो जाते हैं । बगीचे के फल–फूल, चिड़िया, कुत्ता, बिल्ली, गिलहरी अन्य के बच्चे इन सभी से बच्चों का मनोरंजन होता है । साफ खुली हवा में घूमने से उसके बदन में फुरती आ जाती है । शाम को घूमकर लौटने पर बच्चे को थोड़ा सा पानी अवश्य दें ।

अब आपका बच्चा साढ़े बजे तक खेलेगा । इसी बीच में आप उसका बिस्तरा, रात को काम आने वाले नैपकिन आदि वस्तुएं ठीक कर लें, तत्पश्चात् उसके कपड़े बदलकर दिन की अंतिम पाली में दूध पिलावें और सुलाने की व्यवस्था करें । आदत के अनुसार बच्चा कुछ देर में ही अपने पालने में सो जाएगा ।

जैसे–जैसे बच्चा बड़ा होता है, उसके खान–पान, कपड़े आदि में परिवर्तन की आवश्यकता होना स्वाभाविक है । जो परिवर्तन उसके विकास के अनुकूल हो उसे अवश्य करें, उसके शारीरिक और मानसिक विकास की तरक्की ही भरण–पोषण की उपयुक्तता को परखने की सच्ची कसौटी है ।

नियमित दिनचर्या का आदी बनाएं–अगर एक बार आपका बच्चा नियमित दिनचर्या का आदी हो गया तो वह स्वयं ही अपना प्रत्येक काम समय पर करेगा । नियमित दिनचर्या का पावंद होने के लिए बच्चे से मार–पीट या डांट–डपट नहीं करनी चाहिए, नहीं तो बच्चा जिद्दी और रोनू हो जाएगा । अगर प्रातःकाल वह शौच के लिए नहीं जाता है तो उसे डांटना, धमकाना व्यर्थ है । बच्चे को समय पर काम करने की प्रेरणा बड़ों के व्यवहार तथा तदनुकूल वातावरण से मिलती है, उसके लिए नित्य प्रति का अभ्यास बहुत जरूरी है । किसी काम का समय होने पर बच्चे को उस कार्य को करने के लिए मानसिक तैयारी करने में आप भी योग दें, यथा नहाने का समय है तो बच्चे के साफ कपड़े, पानी, कंघी आदि उठाकर रखने में उसे सहयोग दें, भोजन के समय उसकी थाली–कुर्सी सरकाने में लगें । खेलने और सोने के समय भी इसी प्रकार आपके सहयोग की अपेक्षा है, इससे बच्चे की नियमित आदत बनेगी ।

छोटी अवस्था के बच्चों को ऐसे खेल भी खिलाए जाएं जिनमें संकेत या हुक्म मिलने पर या अनुकूल वातावरण देखकर वे सोने, खाने, खेलने आदि का अभिनय करने लगें । इस प्रकार परोक्ष रूप से बच्चों पर बड़ा प्रभाव पड़ता है और कुछ काल बाद समय पर काम करने की उसकी आदत ही बन जाती है । आपने देखा होगा कि कौवे और कुत्ते भी मकान में रहने वालों के खाने के समय को समझने के इतने आदी हो जाते हैं कि जब खाने का समय होता है, वे मुंडेरों पर और दरवाजों पर आकर बैठ जाते हैं । जिन घरों में नहाने, खाने–पीने और काम करने का समय नहीं बंधा होता है, वहां बच्चे भी समय बेसमय काम करते हैं । पिताजी खाने बैठे तो दो कौर उनके संग खा गए, बाद में मां बैठी तो दो कौर उसके साथ खा लिए, अतएव जब उन्हें परोसा जाता है तो बे–मन से भोजन करते हैं । जिस काम को बच्चे मानसिक सहयोग दिए बिना करेंगे वह काम ठीक ढंग से हो ही नहीं सकता ।

बच्चे की दिनचर्या के प्रति मां स्वयं जिम्मेदार हैं । यदि वह आलस और असुविधा का ख्याल छोड़कर बच्चे के प्रत्येक काम को यथासमय करने का नियम बना लेगी तभी बच्चे की सारी दैनिक क्रिया समय पर होगी । बच्चा

स्वयं यथासमय काम करने के लिए उतावला रहेगा, बिना नहाए उसे चैन नहीं पड़ेगा, खाने के समय उसका पेट कुलबुला उठेगा, इसी प्रकार सोने के समय उसकी आंखें भी नींद से भर जाएंगी सायंकाल को वह बाहर जाने के लिए बेचैन हो उठेगा ।

यह शरीर भी एक प्रकार की मशीन है । अभ्यास से मनुष्य समय पर काम करने का आदी बन जाता है । सोना, खाना–पीना, मलमूत्र त्यागना तथा शरीर की अन्य पुकार और मांग का जब मनुष्य को अनुभव होने लगता है तो वह उसको करने के लिए बाध्य होता है । जो उस आवाज को अनसुनी करते हैं, उनका स्वास्थ्य विद्रोह करने लगता है । बच्चा अगर समय पर टट्टी नहीं जाएगा तो उसके पेट या सिर में दर्द होगा और तब उसे इस बात का ज्ञान हो जाएगा कि पेट साफ न होने से मुझे यह तकलीफ हुई है । भविष्य के लिए वह सावधान हो जाएगा । इसी प्रकार समय पर भोजन न करने पर जब उसे तीन घण्टे तक इंतजार करना पड़ेगा तो उसकी समझ में यह बात आ जाएगी कि अगर मैं इस समय भोजन नहीं करूंगा तो तीन घण्टे तक कुछ खाना मिलने की उम्मीद नहीं है, या अगर मैं दोपहर को नहीं सोऊंगा तो शाम को मुझे नींद आ घेरेगी और खेलने को नहीं मिलेगा ।

इस प्रकार बाल्यकाल से ही बच्चे को नियमित दिनचर्या का आदी बनाने की चेष्टा करना माता का कर्तव्य है । ऋतु या आयु के अनुसार यदि दिनचर्या में कोई परिवर्तन करना पड़े तो धीरे धीरे करना चाहिए ताकि बच्चा सरलता से अपना सहयोग दे सके ।

कई बच्चे तो छोटी आयु में ही नियमित स्थान पर टट्टी करना सीख जाते हैं, वे रात को भी अपना बिस्तरा गीला नहीं करते । खाने पीने और सोने के समय भी वे सरलता से व्यवस्थित होते हैं । कई बच्चे ऐसे देखे हैं जो चाहे रात में गहरी नींद में सो रहे हों लेकिन पेशाब की हाजत से जगते ही चारपाई से कूदने लगेंगे, इसके विपरीत कई बच्चे काफी बड़ी उम्र तक अपनी हाजत को रोक नहीं सकते । खाने पीने और सोने के समय भी वे बड़ा परेशान करते हैं, माताओं को ऐसे बच्चों से परेशानी अवश्य होती है, पर इसका यह अर्थ कदापि नहीं लगाया जा सकता कि वे बच्चे अस्वाभाविक रूप से बुरे हैं । अगर आप बच्चों के इन कार्यों को जरूरत

से ज्यादा महत्व देंगे तो वे समझने लगते हैं कि हम जब चाहें बड़ों को परेशान कर सकते हैं । टट्टी पेशाब हमारी अपनी रचना है, हम इसे जब चाहें–जहां चाहें करेंगे । उचित यही है कि बड़ों को बच्चों की गलतियों से घबड़ाना नहीं चाहिए । बच्चा जब प्रातःकाल सबको शौचादि जाते देखेगा तो वह भी यथास्थान, यथासमय उसको करने का आदी हो जाएगा ।आरंभ में बच्चे का समय नहीं बंधा-होता, पर वह इशारों से और हरकतों से बता देता है कि उसे हाजत हुई है, उस समय उसे उचित स्थान पर सुविधाजनक ढंग से बिठा देना चाहिए ।

नखरा करने पर–जो बच्चे खाने के समय बहुत नखरे करते हैं उनकी ओर अधिक ध्यान नहीं देना चाहिए । एक बार भूखा रहकर दूसरी बार बच्चा स्वयं ही भर पेट खा लेगा । जिस घर में चार बच्चे होते हैं, वहां ऐसा नखरा नहीं होता । बच्चे के भूखा रहने पर उसे इनाम या लालच देकर भोजन खिलाने की चेष्टा न करें अन्यथा वह सदैव आपसे ऐसी ही आशा करेगा । कई बच्चे सोने के समय भी बड़ा परेशान करते हैं, एक बार ढककर लिटा देने पर वे पानी पीने अथवा पेशाब जाने के बहाने बार बार उठ–उठकर आते हैं, अगर बच्चा दिन में सोया है तो रात्रि में उसे जल्दी नींद नही आएगी । ऐसी स्थिाति में उसे पलंग पर लिटाकर किसी खिलौने से खेलने अथवा पुस्तक के चित्र देखने की आज्ञा दें, कुछ देर में थककर वह स्वयं ही सो जाएगा, पर डांट–डपट कर बच्चे का 'मूड' बिगाड़ने से संभव है वह जल्द न सोए और उसकी मानसिक शांति नष्ट हो जाए ।

बड़ों की तुलना में बच्चे अधिक प्राकृतिक होते हैं । जन्म से ही सब उनको नियमित दिनचर्या की आदत पड़ जाती है तो अकुला कर, रोकर और सुस्त पड़कर वे अपनी मां या दाई को यह जता देते हैं कि उन्हें असुविधा हो रही है, तब वह स्वयं कह उठती है कि बच्चे के खाने–पीने अथवा सोने का समय हो गया है ।

बचपन की आदतें ही मनुष्य को नियमित और व्यवस्था प्रिय बना देती हैं । बच्चे के पालन पोषण विषयक स्तर को उठाने के लिए नियमित दिनचर्या के महत्व को समझना अपनी भावी पीढ़ी की सबसे बड़ी सेवा करना है । आज हमारी आधी से अधिक समस्याएं ऐसी हैं जो अनियमित दिनचर्या के कारण से हैं, इसी से हम लोगों का हाजमा खराब रहता है,

स्वास्थ्य में गिरावट आ जाती है, बैठे-बैठे गप्प लड़ाने से आपस में झगड़े-झंझट हो जाते हैं और फिर उसी के फलस्वरूप मुकदमेबाजी, वकीलपरस्ती, झूठी गवाही, लबारिता और मिथ्यावादिता का जन्म होता है । अंग्रेज-अमेरिकन क्यों पुरुषार्थी होते हैं ? छोटे से टापू पर निवास करने वाले ६ करोड़ अंग्रेज लोगों ने सारे संसार पर राज्य क्यों कर डाला ? उत्तर यही है कि वे पुरुषार्थी थे और हैं । पुरुषार्थ का सबसे बड़ा चिह्न नियमित दिनचर्या है, अंग्रेज जाति अपने समय के पक्के पाबंद होते हैं । जिस काम के लिए उनका जो समय निर्धारित होता है, ठीक उसी समय वह उस कार्य को करते हैं । यदि आपको ४ बजे मिलने का समय देंगे तो ठीक ४ बजे वे आपकी प्रतीक्षा करेंगे । किसी सभा में यदि ५-३० पर उन्हें पहुंचना है तो, न तो ५-२५ पर और न ५-३५ पर पहुंचेंगे वरन् ठीक ५-३० पर वे सभा में दीख पड़ेंगे, खाने-पीने, सोने-जागने सब का समय नियत रहता है ।

अब हम स्वतंत्र हो गए हैं । इस बात का हमें अच्छी प्रकार ज्ञान कर लेना चाहिए कि नियमित जीवन बनाने से ही कोई जाति, राष्ट्र अथवा देश उन्नति की ओर जा सकता है । बिना इस गुण को अपनाए सारा मामला गुड़ गोबर हो जाता है । हमारी योजनाएं प्रायः इसीलिए सफल नहीं हो पातीं कि जीवन में समय की पाबंदी का बड़ा महत्व है, समय की पाबंदी करके छोटी शक्ति और साधन वाले व्यक्ति बड़े-बड़े काम कर दिखाते हैं, लेकिन इसके विपरीत बड़ी बुद्धि, शक्ति, साधन और ज्ञान रखने वाले असंयमी लोग अपने जीवन में कोई विशेष कार्य नहीं कर पाते हैं ।

नियमितता की परंपरा हमें अपने नन्हे-मुन्ने बच्चों से प्रारंभ करनी है, उन्हीं के जीवन को नियमित करना है क्योंकि वही तो राष्ट्र और धर्म के भावी कर्णधार हैं, प्रत्येक माता का इस पुण्यबेला-युग निर्माण के समय यह नीति कर्तव्य होना चाहिए-धर्म होना चाहिए कि जन्म से ही वह अपने बच्चे को नियमित बना दे, उसमें अच्छी आदतें डाल दें ।

हमारे घरों में अधिकांश लोगों की दिनचर्या अनियमित होती है, इसीलिए बच्चे किसी भी काम के लिए न तो अनुकूल वातावरण पाते हैं और न ही वे वर्तमान में लीन होकर यथाशक्ति अपने कार्य को सफल बना सकते हैं । यही कारण है कि बड़े होकर भी वे न तो अपने समय का मूल्य समझते हैं और न ही

दूसरे की समय की पाबंदी की प्रशंसा कर सकते हैं, उनके जीवन में सारी उम्र समय के अभाव का रोना बना रहता है और वे हमेशा मौका चूक जाते हैं– जीवन की असफलता का यह एक बहुत बड़ा कारण है ।

अन्य अच्छी आदतों के साथ ही भोजन संबंधी स्वस्थ आदतें भी बच्चों में डाली जानी चाहिए ।

एक ओर जहां बच्चों के रोगों को डाक्टर अक्सर यह शिकायत करते हैं कि बाल रोगों का अधिकांश कारण मां का अंध ममत्व रहता है, वहीं दूसरी ओर माताएं अक्सर यही शिकायतें–चर्चाएं करती रहती हैं कि उनका बच्चा तो कुछ खाता ही नहीं, दुबला होता जा रहा है ।

माताओं का यह तो कर्तव्य अपने स्थान पर सर्वथा उचित है कि वे अपने बच्चों के विकास व वृद्धि के लिए उन्हें उपयुक्त भोजन उपलब्ध करायें परंतु भोजन के प्रति अधिकांश माताओं का दृष्टिकोण व ज्ञान उपयुक्त न होने के कारण एवं बच्चों को अधिकाधिक खिला खिलाकर उनके पेट में ठूंसते रहने की लालसा के कारण बेचारे बच्चे चाहे प्रारंभ में दुबले न हों, परंतु अधिक खा जाने के कारण रोगग्रस्त हो अवश्य ही दुबले हो जाते हैं । डाक्टरों की चिंता, मां की अधिक खिलाने की इच्छा व बच्चे का हठ–इन तीनों के बीच कोई सामंजस्य न रह पाने से बच्चों में भोजन के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण नहीं बन पाता । उनकी आदतें यदि शुरू में ही नहीं सुधारी जातीं तो वे बालरोग विशेषज्ञों की समस्याएं बढ़ाते ही रहेंगे । अतः बच्चों के अभिभावकों, माता–पिताओं के लिए यह उपयोगी होगा कि वे भोजन करने–कराने का उद्देश्य व उपयोग समझकर तदनुरूप ही अपने बच्चों में भी स्वस्थ संस्कार डालने का प्रयास करें ।

भोजन इसलिए किया जाता है कि इससे शरीर को निरंतर शक्ति प्राप्त होती रहे, ताकि शारीरिक वृद्धि व विकास के लिए जो अतिरिक्त शक्ति की आवश्यकता रहती है, उसकी पूर्ति होती रहे एवं शरीर द्वारा नित्य प्रति किए जाने वाले कार्यों से होने वाले शक्ति ह्रास की पूर्ति होती रहे । अतः इस दृष्टि से जो पदार्थ उपयोगी हों उन्हें ही हमारे भोजन में सम्मिलित किया जाना चाहिए । जन्म से लेकर ७–८ माह के अंदर बच्चों के दांत निकल आते हैं व उनकी हड्डियों का विकास होना प्रारंभ हो जाता है । प्रारंभ में बच्चा बड़े वेग से बढ़ता है, उसके शरीर के विभिन्न अवयवों व

अस्थियों की वृद्धि होती है, अतः इस अवसर पर बच्चों को अधिक बसा युक्त एवं कैलशियम वाले पदार्थ दिए जाने चाहिए और बड़े होने पर बच्चे अधिक खेलते कूदते हैं तथा उन्हें शरीर का अधिक श्रम करना पड़ता है, इससे शारीरिक शक्ति का ह्रास होता है । अतः इसकी क्षति पूर्ति के लिए भी बच्चों को अधिक पुष्टिकारक भोजन की आवश्यकता रहती है । साधारणतया बच्चों को भोजन में दूध, दूध की बनी चीजें, अन्न (गेहूं, जौ, मक्का, ज्वार, बाजरा, चावल आदि) दालें व कुछ फल (सेव, नारंगी, लीची आदि) साग–सब्जी (हरी भाजी, कंद आदि) दिए जाने चाहिए ।

दूध बच्चों के लिए आवश्यक भोजन माना गया है, क्योंकि इसमें बच्चों की वृद्धि के लिए आवश्यक सभी तत्व विद्यमान रहते हैं । वैसे दूध गाय, भैंस, बकरी किसी का भी अच्छा रहता है, परंतु गाय के दूध में प्रोटीन व लवण अधिक होने से वह अधिक उपयोगी रहता है । दूध एवं हरी सब्जी, दालों एवं अन्नादि के शाकाहारी भोजन में आवश्यक सभी तत्व मिल जाते हैं । बच्चों को निश्चित समय पर निर्धारित मात्रा में यदि शाकाहारी भोजन दिया जाता रहे तो वे स्वस्थ व पुष्ट बने रहते हैं । इस दृष्टि से बच्चों में सदैव ही इस तरह के संस्कार डाले जाने चाहिए कि वे खाने योग्य पदार्थों के सेवन को ही अपनी आदत बनावें । सादा, ताजा, बिना दुर्गंध के भोजन को भगवान कृष्ण ने गीता में सात्विक भोजन बताया है, इस तरह का भोजन ही अधिक अच्छा व उपयोगी है । बच्चों में प्रारंभ से ही ऐसे संस्कार डाले जाने चाहिए कि वे भोजन शरीर व स्वास्थ्य के लिए करें, न कि स्वाद व जीभ के लिए । स्वाद में अच्छे लगने वाले मसालेदार चटपटे जायकेदार पदार्थों के सेवन से बच्चों की पाचन शक्तिं भी क्षीण होती है व तरह तरह के रोग इससे हो जाते हैं ।

बच्चों में अधिकाधिक खाने–खिलाने की समस्या तो बाद में आती है, पहिले तो माताओं के समक्ष यह चिंता मुख्य रहती है कि वह अपने बच्चे में भोजन के बारे में स्वस्थ आदतें डालें । शैशवावस्था में बच्चा मां का दूध छोड़ने को प्रथमतः तो तैयार ही नहीं होता व माताएं जब स्तन दुग्धपान छुड़ा भी देती हैं तो वह बोतल का दूध व पेय पदार्थों को ही प्रिय समझे रहता है व ठोस भोज्य पदार्थ ग्रहण नहीं करता । बच्चों के प्रारंभिक काल में तो मां का दूध तथा ऊपर का दूध उपयुक्त रहता है, परंतु बाद में जैसे

जैसे वह बढ़ता रहता है, उसके शरीर की वृद्धि एवं उसके समुचित विकास के लिए उसे ठोस भोजन पदार्थ तथा अन्न, शाक–भाजी, दाल आदि भी दिया जाना चाहिए, कारण कि इनके बिना उसका स्वास्थ्य व समुचित विकास प्रायः असंभव ही रहता है ।

शिशु के बढ़ते शरीर की आवश्यकता को देखते हुए उसे ठोस भोज्य पदार्थों की आवश्यकता पड़ने लगती है व बिना इनके उसका शारीरिक विकास अपेक्षानुरूप नहीं हो पाता । ठोस भोज्य पदार्थ खिलाना प्रांरभ करना अपने आप में एक बड़ा काम रहता है व इसीलिए शायद बच्चों को प्रथम बार ठोस भोजन खिलाने के कार्य को पर्व के रूप में मनाया जाता है, जिसे अन्न प्राशन के नाम से जाना जाता है ।

जब एक बार बच्चा ठोस भोज़न पदार्थ ग्रहण करना प्रारंभ करता है तो फिर मां–बाप के समक्ष दूसरी समस्या यह आती है कि बच्चा स्वयं के हाथ से भोजन नहीं खाता, इसके लिए बड़े–बूढ़े उसको लाड़–प्यार से खुद खिलाते रहते हैं । यह प्रवृत्ति थोड़े समय के लिए तो ठीक है, परंतु अधिक समय तक लाड़–प्यार बच्चों को बिगाड़ देगा व उनमें भोजन ही क्या हर काम करने के लिए दूसरों पर निर्भर रहने की आदत डाल देगा, अतः जितनी जल्दी संभव हो सके अभिभावकों एवं मुख्यतः मां को यह प्रयास करना चाहिए कि बच्चा अपना भोजन स्वयं ही करे । कई घर परिवारों में बच्चों को भोजन कराने–खिलाने के लिए बड़ी चिरोरियां–मिन्नतें की जाती हैं, परंतु इस तरह बड़ों का शौक व वात्सल्य चाहे पूरा होता सा उन्हें दीखे, परंतु बच्चों में ढीठता आ जाती है फिर यह ऐसा संस्कार बन जाता है कि प्रायः हर काम के लिए खुशामद कराता रहता है । अतः बच्चों को भोजन के लिए आग्रह–प्रस्ताव तो करना चाहिए, परंतु इसके लिए उनकी निरंतर खुशामद नहीं की जानी चाहिए एवं तनिक कठोरता की भी आवश्कयता हो तो उसका उपयोग कर बच्चों को भोजन की आदतें डालना चाहिए ।

कभी कभी यह भी होता है कि कतिपय परिवारों के बच्चों में दिन में कई बार या यों कहा जाए कि दिन भर खाते रहने की भी जो आदत बन जाती है, वह कोई स्वस्थ आदत नहीं । ऐसे बच्चों को बहुधा पेट की बीमारियां हो जाती हैं । अधिक भोजन से बीमारी का उपचार तो किया–कराया जा सकता है परंतु शारीरिक बीमारी से अधिक नुकसानदायक बात

यह होती है कि उनकी बार बार खाते रहने की आदत बन जाती है । अतः मां बाप अपने बच्चों में ऐसे संस्कार डालें कि बच्चे अपने नियत समय पर ही खाएं–पीएं व उसके बाद कभी भी चाहे घर में मेहमान आवें या मां बाप के साथ मेहमानी में जाएं न खाएं–पीएं । दूसरे आग्रह भी करें तो नम्रता से मना कर दें, इसके लिए मां बाप को चाहिए कि घर में बच्चों की संख्या व अपनी आर्थिक स्थिति को देखते हुए ऐसी व्यवस्था बनावें कि जिससे बच्चों को खान पान का अभाव न रहे तथा अपनी वित्तीय सीमा में रहते हुए सादा भोजन की ही व्यवस्था करने एवं बच्चों को सही ढंग से सस्नेह यदाकदा न खाते रहने की सीख दें ।

बच्चों में यह अच्छी तरह जमा दी जानी चाहिए कि भोजन सादा रहे पर पुष्टिकारक व स्वास्थ्यप्रद हो, कारण कि हम भोजन पूरे शरीर की पुष्टि के लिए करते हैं जीभ की तुष्टि के लिए नहीं ।

बच्चे घर की पाठशाला में

घर बच्चे की प्रारंभिक पाठशाला है, जहां वह जीवन के महत्वपूर्ण पाठ सीखता है । स्कूल, कॉलेज, विद्यालयों में तो बालक का बौद्धिक विकास ही होता है । एक निश्चित पाठ्यक्रम पूरा कर देना ही इनका ध्येय होता है, जिसका जीवन में सीमित उपयोग है, लेकिन घर की पाठशाला में सीखी हुई बातें तो बालक के जीवन का अंग ही बन जाती हैं । वस्तुतः बालक के चरित्र, स्वभाव, उसके व्यक्तित्व की निर्माणशाला घर ही है, जबकि शालाओं में एक स्तर तक बौद्धिक विकास ही हो पाता है ।

जिस तरह अनुकूल जलवायु, मिट्टी एवं योग्य माली की देखरेख में छोटा–सा पौधा बड़ा होकर फलने लगता है, उसी तरह घर के उपयुक्त वातावरण में कुशल मां बाप के सान्निध्य में रहकर बालक का स्वभाव और उसका व्यक्तित्व–चरित्र उत्कृष्ट बनता है, लेकिन घर के गंदे वातावरण में मां बाप का पापमय जीवन बच्चे के लिए बुराईयों की ओर प्रेरित करता है । घर के वातावरण में घटने वाली सामान्य घटनाएं, अभिभावकों के व्यवहार, रहन सहन,आचरण का बच्चे के मानस पटल पर बड़ा प्रभाव पड़ता है ।

जिस घर का वातावरण बड़ा सौम्य, शांत और मधुर होता है, जहां लोगों में परस्पर प्रेम, सेवामय जीवन, सदभावनापूर्ण संबंध होंगे वहां बालक

के मानसिक विकास में बड़ा योग मिलता है । जहां बच्चें को उन्मुक्त होकर सहज जीवन बिताने दिया जाता है, जहां उसे सबका स्नेह मिलता है, जहां बालक निर्भय जीवन बिताता है—ऐसा वातावरण बालक के व्यक्तित्व का चतुर्मुखी विकास करने में बड़ा सहायक सिद्ध होता है ।

लेकिन उस घर में नित्य कलह, अशांति, परस्पर तनातनी, झगड़ा होता रहता है, जहां बालक को स्नेह शून्य सखा विहीन जीवन बिताना पड़ता और कठोर व्यवहार का सामना करना पड़ता है, वहां उसका विकास होना तो दूर उल्टे मानसिक क्षमताएं, बौद्धिक प्रतिभा—व्यक्तित्व सब कुण्ठित हो जाते हैं ।

जो मां बाप या अभिभावकगण परस्पर 'तू—तू, मैं—मैं' करते रहते हैं, जिनमें परस्पर आए दिन लड़ाई झगड़े, मार पीट होती रहती है, जो एक दूसरे को मूर्ख एवं नीच सिद्ध करने के प्रयत्न करते रहते हैं । भद्दे आक्षेप करते हैं, उनके इस व्यवहार का बालको के कोमल मस्तिष्क पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है, बच्चे का अपरिपक्व मस्तिष्क इस तरह के व्यवहार को समझ नहीं पाता, इससे उसके मन पर विपरीत प्रभाव पड़ता है, जिसके फलस्वरूप मां—बाप अथवा घर के अन्य सदस्यों के प्रति उसके मन में आदर—भाव कम हो जाता है । सम्मान की भावना घट जाने से बच्चों में अश्रद्धा भी पैदा हो जाती है । श्रद्धा के बिना विश्वास स्थिर नहीं रहता । श्रद्धा और विश्वास रहित ये बच्चे मां—बाप की अवहेलना करने लगते हैं, अनुशासन हीन बन जाते हैं—यह स्थिति परिवार तक ही सीमित नहीं रहती वरन् संपूर्ण समाज की मर्यादाओं के प्रति ही ये बालक आगे चलकर आवारा और उच्छृंखल बन जाते हैं ।

घर का कलह, परिवार के सदस्यों का परस्पर दुर्व्यवहार, बच्चों में अश्रद्धा, अविश्वास, अनुशासनहीनता, उच्छृंखलता आदि बुराइयों को जन्म देता है । अतः आवश्यकता इस बात की है कि पति—पत्नी के बीच होने वाली तकरार अथवा परिवार में होने वाला कलह सर्वथा दूर करने का प्रयास किया जाए । यदि कुछ इस तरह की बात हो भी जाए तो बच्चों के सामने उसे न आने दें । जिस तरह किसी मेहमान के सामने अपने घर की लड़ाई को छिपा लिया जाता है, उसी तरह बच्चों के समक्ष भी ऐसा ही करना चाहिए । अपने घर की बात तो दूर रिश्तेदार अथवा पड़ौसियों के

झगड़े की बात को बच्चों तक नहीं आने देना चाहिए ।

अभिभावकों को चाहिए कि बच्चों के समक्ष अपनी कोई चारित्रिक कमजोरी प्रकट न होने दें । बच्चा कितना ही अबोध क्यों न हो उसके समक्ष परस्पर प्रेम प्रदर्शन, अश्लील हाव भाव अथवा गलत आचरण कभी न किया जाए । बच्चे की मनोभूमि इतनी ग्रहणशील होती है कि जाने अनजाने वह इनको सहज ही अपना लेती है, जहां तक बने दुर्व्यसनों को तिलांजलि दे देनी चाहिए, फिर भी कोई बुराई न छूटे तो इतना तो ध्यान रखना ही चाहिए कि बच्चों के समक्ष उसे व्यक्त न होने दें । बीड़ी, सिगरेट, तंबाकू आदि कोई भी व्यसन एकांत में पूरा किया जाए, बच्चों के समक्ष नहीं ।

बच्चों के समझदार और कुछ बड़े हो जाने पर उनके लिए सोने की व्यवस्था अलग कर देनी चाहिए । समझदार बच्चों को एक ही कमरे में लेकर न सोया जाए । क्योंकि पति पत्नी के गुह्य संबंधों का बच्चे पर बुरा प्रभाव पड़ता है, इसके साथ साथ बच्चों को नंगा नहीं रखना चाहिए, इससे असमय में ही बच्चों में यौन भावनाएं जाग्रत हो जाती हैं जो उन्हें कई बुराइयों की ओर प्रवृत्त कर देती हैं ।

अभिभावकों, माता–पिताओं को चाहिए कि बच्चों की विधिवत् दिनचर्या बनाकर उसके अनुसार उन्हें चलाने की व्यवस्था करें । बच्चों के खाने–पीने, सोने–पढ़ने–खेलने आदि का समय नियत कर देना चाहिए । लेंकिन इसके साथ ही अभिभावकों का स्वयं का जीवन भी व्यवस्थित, नियमित होना चाहिए, उनका आदर्श ही बच्चों को नियमित जीवन बिताने के लिए प्रेरणादायी होगा, बच्चे अपने नियमित कार्यक्रम में गफलत करें, तो उसे टोककर नियमानुसार जीवन बिताने को कहना चाहिए, लेकिन सोने के समय पढ़ने अथवा खेलने के समय घर का काम करने की आज्ञा देने की भूल नहीं करनी चाहिए । बच्चे को उसकी नियम व्यवस्था के अनुसार चलने देना चाहिए, यदि कोई आवश्यक काम ही आ पड़े तो बात दूसरी है अन्यथा बच्चों के कार्यक्रम में यथासंभव व्यवधान पैदा नहीं करना चाहिए ।

किसी तरह के भय–अंधविश्वास या गलत धारणा का आश्रय लेकर बच्चों को निर्देश नहीं देना चाहिए, भले ही वह उनके हित में ही क्यों न हो भूत, चुड़ैल, कीड़े–मकोड़े या हौवा का भय बच्चों को नहीं दिखाना चाहिए ।

बचपन में जमी हुई भय की भावना जीवन भर नहीं निकल पाती है, बचपन के समय अवचेतन मन में समाया हुआ इस तरह का भय तगड़े, तंदुरुस्त, मोटे–ताजे व्यक्तियों को भी अंधेरे में एकांत में कोई छोटा–मोटा जानवर देख लेने पर परेशान करता है । स्वयं अभिभावकों को भी इस तरह के भय प्रदर्शन से बच्चों के समक्ष बचना चाहिए ।

माता–पिता या अभिभावकों की भावनाओं का, उनके व्यवहार का भी बच्चों के जीवन पर बड़ा असर पड़ता है । वस्तुतः घर की पाठशाला में अभिभावकों का जीवन ही बच्चों की प्रथम पुस्तक होती है । बच्चों के साथ ही नहीं मां बाप दूसरों के साथ कैसा व्यवहार करते हैं इसका बालक के मन पर भारी प्रभाव पड़ता है । इस संबंध में एक घटना बड़ी महत्वपूर्ण है–एक धनिक व्यक्ति लेन देन के मामले में एक गरीब व्यक्ति को बड़ी गालियां दे रहा था, उसने उसे नौकरों से पिटवाया और धक्के देकर निकाल दिया, उसका गिरवी रखा हुआ जेवर धनिक ने हड़प लिया । गरीब बेचारा रोता–चिल्लाता चला गया । बालक का कोमल हृदय यह सब सहन नहीं कर सका और अपने पिता के प्रति उसके हृदय में कटुता और घृणा की भावना पैदा हो गई, वह विद्रोही बन गया । बाप का कहना–सुनना उसे बुरा लगता, ऐसे काम वह करता जिससे धनी पिता को क्लेश होता, पिता की परेशानी से प्रसन्नता होती । अंत में परिस्थिति यहां तक आ गई कि बड़ा होने पर उसने सारे धन पर कब्जा कर लिया और पिता की बीमारी में तड़पकर प्राण छोड़ने पड़े लेकिन उसके हृदय पर कोई प्रभाव नहीं हुआ ।

उस बहू की कहावत प्रसिद्ध है जो अपने ससुर को मिट्टी के पात्र में भोजन देती थी । एक दिन मिट्टी का पात्र फूट गया तो बहू बहुत झल्लाई, कई गालियां दीं । उसने लकड़ी का पात्र मंगवा दिया और चौके से बाहर भोजन दे दिया । उसका अबोध बालक यह सब देख रहा था । दूसरे दिन वही बालक एक लकड़ी के तख्ते को पत्थर से ठोक–पीट रहा था । मां ने पूछा–बेटा ! क्या कर रहा है ? बालक ने अपनी बाल सुलभ भाषा में कहा–अम्मा मैं लकड़ी की थाली बना रहा हूं । जब तू बूढ़ी हो जाएगी तो इसी में भोजन परसा करूंगा । वह स्त्री हक्की–बक्की रह गई और उसी दिन से वृद्ध ससुर को अच्छे पात्रों में आदर सहित भोजन देने लगी ।

माता–पिता द्वारा नौकर, पड़ौसी, संबंधी, दुकानदार, जनसाधारण से किया जाने वाला व्यवहार बच्चे के कोमल मस्तिष्क पर बहुत बड़ा प्रभाव डालता है । आवश्यकता इस बात की है कि हमें अपने संपूर्ण जीवनक्रम में, व्यवहार में पर्याप्त सुधार करना होगा । कोई ऐसा दुर्व्यवहार न बन पड़े, जिससे बच्चे पर विपरीत असर पड़े–इसका पूरा पूरा ध्यान रखना होगा । यदि हमें अपने बच्चों के चरित्र, स्वभाव व व्यक्तित्व को उत्तम बनाना है तो इसमें कोई संदेह नहीं कि बच्चे पैदा होने पर मां–बाप के ऊपर एक बहुत बड़ी जिम्मेदारी आ जाती है, वह है बच्चों को उत्कृष्ट व्यक्तित्व प्रदान करना, उनके स्वभाव और चरित्र को उत्तम बनाना और यह सब घर की पाठशाला में व्यावहारिक शिक्षा से ही संभव है ।

बहुत से माता–पिता अपने बच्चे को किसी बोर्डिंग हाउस या अपने से दूर किसी प्रसिद्ध स्कूल में भेजते हैं, इसलिए कि बच्चा घर पर भली प्रकार नहीं पढ़ता, समय पर स्कूल नहीं पहुंचता, अपनी पढ़ने की पुस्तकें तथा अन्य वस्तुएं खो देता है, आवारा लड़कों में घूमता है, घर वालों की आज्ञा का पालन नहीं करता । कई लोग तो बच्चे के हित की दृष्टि से नहीं वरन् उससे पीछा छुड़ाने, उसकी आदतों से परेशान होकर अपना सिर दर्द दूर करने की दृष्टि से बालक को अन्यत्र भेज देते हैं । कई अभिभावक अपने पास अधिक धन होने के कारण बच्चे को बहुत छोटी उम्र में ही अपने से दूर पढ़ने और योग्य बनने के लिए भेज देते हैं । कुछ भी कारण हों लेकिन बच्चों को कच्ची उम्र में जब तक वह समझने–बूझने लायक नहीं हो पाता है, अपनी छत्रछाया से दूर करना अभिभावक की बड़ी भारी भूल है । किसी भी संस्था, स्कूल, विद्यालय बोर्डिंग आदि में बच्चों के पढ़ने–लिखने व नियमित जीवन बिताने तथा सदाचार की बाह्य शिक्षा–व्यवस्था भले ही हो किंतु उन्हें उत्कृष्ट व्यक्तित्व प्रदान करने, सफल जीवन बिताने का मार्ग प्रशस्त करने के लिए माता–पिता–अभिभावकगण जो कुछ कर सकते हैं वह कहीं भी नहीं हो सकता । सचमुच अपने परिवार के सदस्यों से अधिक बच्चे के भविष्य की चिन्ता और उस दिशा में आवश्यक प्रयत्न अन्य कोई भी नहीं कर सकता । अतः यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि बच्चे को एक निश्चित आयु तक–जब तक उसका मस्तिष्क प्रौढ़ और परिपक्व न हो जाए उसे घर की सीमा से बाहर नहीं भेजना चाहिए ।

बच्चों के जीवन को उत्कृष्ट बनाने की जिम्मेदारी जिस तरह माता-पिता निभा सकते हैं उससे अधिक दूसरा नहीं निभा सकता । इसके अतिरिक्त बाह्य वातावरण में बच्चे को भले ही कितनी ही अच्छी शिक्षा क्यों न मिले वह मौखिक होने से अस्थायी होती है । स्थायी और सच्ची शिक्षा तो बच्चा अभिभावकों के संरक्षण में, उनके व्यावहारिक जीवन से ही सीख पाता है । वैसे स्कूल बोर्डिंग, शिक्षा संस्थाएं उपयोगी होती हैं, किंतु बच्चों के निर्माण का पूरा पूरा उत्तरदायित्व इन पर नहीं छोड़ा जा सकता । वस्तुत: बच्चों के चरित्र निर्माण में माता-पिता के स्नेह से युक्त, शांत सुखदायी घरेलू वातावरण का बहुत बड़ा महत्व है ।

बच्चों के शासक नहीं, सहायक बनें

बाल मस्तिष्क अपरिपक्व होता है, प्रत्येक बच्चा जन्मकाल से ही निरंतर उत्कर्ष और परिपक्वता की दिशा में अग्रसर रहता है, अपने बच्चे का विकास प्रत्येक माता-पिता चाहते हैं । लेकिन यह आकांक्षा उस समय हानिकारक हो उठती है, जब वे बच्चे के विकास की प्रक्रिया के समझदार दर्शक न रहकर अधीर हो उठते हैं और बच्चे को शीघ्र से शीघ्र समझदार बना डालने के लिए बेचैन होकर सीख के नाम पर उस पर शासन करने लगते हैं । इसका परिणाम विपरीत ही होता है, बच्चे का मस्तिष्क माता-पिता के निर्देशों का अर्थ नहीं समझ पाता और गलत अर्थ लगा लेता है, इससे शिशु के मानसिक विकास को क्षति पहुंचती है अत: आवश्यकता इस बात की है कि बच्चे के मस्तिष्कीय विकास में हम सहायक बनें, बच्चे को आत्म निर्भर बनने दें, उसे समझदार बनाने के फेर में परावलंबी न बना डालें । आवश्यकता से अधिक निर्देश देने पर बच्चा सदैव माता-पिता की इच्छा ही भांपता-ताकता रहता है, क्योंकि वह समझता है कि प्रशंसा और पुरस्कार प्राप्ति का यही एक मार्ग है-ऐसे में उसकी स्वतंत्र निर्णय शक्ति कुंद होने लगती है ।

बालक की सामर्थ्य स्वत: ही विकासशील होती है । आवश्यकता मात्र इस बात की होती है कि उसकी विकास दिशा के प्रति जागरूक रहा जाए और सहायता की जाए । उदाहरण के लिए एक वर्ष का बच्चा जब खड़े होने का प्रयास करता है तो उसे इतनी बुद्धि नहीं होती कि वह पहले यह

अनुमान लगाए कि उसमें खड़े होने की सामर्थ्य आ भी गई है या नहीं ? वह तो माता–पिता की तरह या बड़े भाई–बहिनों की तरह स्वयं भी अपने पांवों पर खड़ा होना चाहता है, इसके लिए वह सीधे खड़े होने की कोशिश करता है । इस प्रयास में वह बार बार गिरेगा, किंतु यदि माता–पिता उसके इस प्रयास को देखकर उसे गिरने न देने की चिंता से गोदी में उठा लें तो बच्चे के प्रति अन्याय होगा, उसका स्वाभाविक विकास रुक जाएगा । यही बात बच्चों के सीढ़ियां चढने पर लागू होती है, गेंद आदि खेल रहा बच्चा किसी कुएँ के बिल्कुल पास न पहुंच जाए या सड़क पर न चला जाए–इतनी भर ही सावधानी पर्याप्त है । उसके दौड़ने, गिरने–पड़ने से बहुत परेशान होना भी अनावश्यक है ।

यहां दोनों पक्षों का स्मरण आवश्यक है, जहां बालक को पग पग पर निर्देश देना हारिकारक है, वहीं उसमें यह बोध भी बने रहने देना जरूरी है कि किसी भी आवश्यक क्षण में उसे माता–पिता का सहज सहयोग उपलब्ध होगा । क्योंकि यदि बच्चे को मन में यह आश्वासन न रहे तो उसे एक तरह की अपंगता और हीनता का अनुभव होगा तथा उसके विकास में व्यवधान आएगा । उसे हानिकर चेष्टाओं से विरत रखने के लिए भी अभिभावक की उपस्थिति एवं सतर्कता आवश्यक है ।

शिशु के लिए संसार की प्रत्येक वस्तु जिज्ञासा की प्रेरक होती है, उस की जिज्ञासा का समाधान आवश्यक है । झिड़की, डांट–फटकार से उसकी जिज्ञासा–वृत्ति तो कुण्ठित होगी ही, वह अर्थ का अनर्थ भी कर बैठेगा । उदाहरण के लिए बच्चा किसी पुस्तक या समाचार पत्र से खेलने को उतारू है तो उसे बताया जाए कि यह पढ़ने की सामग्री है और इसे इस तरह हाथों में थामा जाता है । यदि उत्तेजना वश उसे झिड़क दिया गया तो वह यह समझ सकता है कि पुस्तकें आदि छूने की वस्तुएं नहीं हैं, इससे उसकी उत्सुकता मंद पड़ेगी या फिर आकस्मिक डांट से वह अभिभावक के पास आने में कतराने लग सकता है ।

एक ओर जहां अकारण झिड़कना अनुचित है वहीं अनावश्यक सहयोग भी हानिकर है । पाठशाला जाने वाले बच्चे का गृह कार्य (होमवर्क) प्रारंभ में स्वयं ही कर देने वाले माता–पिता या भाई बहिन बच्चे का अनिष्ट ही करते हैं । यदि शुरूआत ही इस तरह की गई हो तो बच्चा और बड़ा होने पर भी

ऐसी ही अपेक्षा पाले रहेगा और परमुखापेक्षी तथा कातर बना रहेगा ।

दूसरी ओर उसकी कठिनाई को न समझने पर तथा डांट देने पर बालक के मन में उदासीनता घर कर जाएगी । यदि विद्यालय में सीखी बात ठीक से न समझ पाने के कारण बच्चा 'होम–वर्क' नहीं कर पा रहा है तो उसे यह कहकर झिड़क देने पर कि 'स्कूल में क्या सोते रहते हो ?' उसके मन में कुण्ठा उत्पन्न हो जाएगी, वह 'होम वर्क' को बोझ मान लेगा, पढ़ाई के प्रति उदासीन होने लगेगा और फिर सचमुच स्कूल में सोने लगेगा । उदासीनता की प्रवृत्ति का विकास बच्चे के व्यक्तित्व को अत्यधिक क्षति पहुंचाता है तथा उसे अधिकाधिक आत्म केन्द्रित बनाता है । ऐसे ही शिशु आगे चलकर अपराधी या असामाजिक तत्वों के हस्तक बन जाते हैं । अतः बालक को निष्क्रिय एवं आत्म केन्द्रित कभी भी नहीं बनने देना चाहिए, उसकी शक्ति सदैव क्रियाशील तथा रचनात्मक बनी रहे–इसका ध्यान रखना आवश्यक होता है ।

बच्चों को डराना–धमकाना तो कभी भी चाहिए ही नहीं, क्यों इससे उनमें कायरता और हीनता की भावनाएं पनपती हैं । बालक की इच्छा का सदैव सम्मान करना चाहिए, जिस समय उसके मन में क्रीड़ा की लालसा प्रबल है उस समय अध्ययन के लिए बैठने को विवश करना उस पर अन्याय है । सही विधि यह है कि उसे खेलने की अनुमति दे दी जाए और स्मरण करा दिया जाए कि इसके बाद पढ़ना है, वह सहर्ष इसे स्वीकार कर लेगा । उल्लास बच्चे में भरपूर होता है, उस उल्लास को कभी भी दबाना नहीं चाहिए । उसका सही उपयोग करना चाहिए, इस सबका यह अर्थ कदापि नहीं कि बच्चे को अनुशासन न सिखाया जाए । यदि बच्चे को खेलने की अनुमति देते समय आपने बाद में पढ़ने को कहा तो इस बात का ध्यान रखें कि वह खेल के बाद पढ़ने बैठता है या नहीं ? यदि वह खेल के दौरान पढ़ाई वाली बात भूल गया है तो उसे इसका स्मरण दिला देना चाहिए । यदि इस पर भी वह टालमटोल करता है तो अनुशासन की पद्धति निःसंकोच अपनानी चाहिए ।

शिशु के दैहिक विकास की ही भांति उसका व्यक्तित्व विकास भी अत्यधिक महत्वपूर्ण है, उस ओर समुचित ध्यान देना अति आवश्यक है । बच्चे अतिशय संवेदनशील होते है और प्रत्येक घटना का उन पर प्रभाव

पड़ता है । अतः उनमें विध्वंसात्मक प्रवृत्तियां विकसित न हों, इसकी चौकसी जरूरी है । ईर्ष्या–द्वेष, तोड़–फोड़ की भावनाएं बचपन में ही जड़ जमा बैठती है और बड़े होने पर उनका विकराल रूप सामने आता है, किंतु इन प्रवृत्तियों को भी मात्र दण्ड द्वारा नहीं सुधारा जा सकता, दमन के स्थान पर मार्गान्तरण का सहारा लेना ही लाभकर होता है । बच्चे को रचनात्मक प्रवृत्तियों के विकास का अधिकाधिक अवसर देने से उसकी विध्वंसात्मक प्रवृत्तियां परिमार्जित हो जाती है ।

बच्चे सरल–निश्छल होते हैं, उनकी एक सामान्य रुचि तो होती है, पर विशेष रुचियां अभ्यास से ही जगती हैं । जिस प्रवृत्ति का अभ्यास उन्हें होता जाता है उसी ओर रुचि जगती जाती है, इसलिए बालक के प्रत्येक अभ्यास का और उस अभ्यास के प्रति प्रत्येक प्रतिक्रिया का महत्व है । गलत आदतें डांट–फटकार और शासन से नहीं समझाने बुझाने से ही छूटती हैं । बच्चे के लिए प्रत्येक बात नई होती है, इसलिए हमारे आदेश–उपदेश सुनते ही वह उनका पालन करने लगेगा, ऐसी अपेक्षा कदापि नहीं करनी चाहिए । उस निर्देश के पालन में उसे मानसिक कठिनाई का अनुभव हो सकता है, उस कठिनाई को सुलझाने में सहयोग देना अभिभावक का कर्तव्य है ।

सम्मिलित परिवार प्रथा में वयोवृद्ध बाबा–दादी अनुभवपक्व भी होते हैं और समय भी उनके पास होता है । बालक की चेष्टाएं देखना उन्हें समय बिताने का सुन्दर उपाय प्रतीत होता है, इसलिए वे हड़बड़ी में नहीं होते । दुनिया देख चुकने के कारण वे छोटी छोटी बात में अधीर भी नहीं हो उठते, यदि वे सुसंस्कृत हों तो उनमें अंधा मोह भी नहीं होता । अतः वे बालक को समय भी भरपूर देते हैं, उसे खेल में सीख भी देते रहते हैं तथा शिशु को शासित बनाने की व्यग्रता भी उन्हें नहीं होती, ऐसे में शिशु का अधिक स्वस्थ विकास होता है । बच्चे को जन्म देने से कई गुनी अधिक जिम्मेदारी उसके व्यक्तित्व विकास में सहायक बनने की होती है ।

यहां यह भी स्मरणीय है कि बच्चों को देखभाल, पालन–पोषण में जिस चातुर्य तथा योग्यता की आवश्यकता पड़ती है, वह वयस्क–परिपक्व व्यक्ति में ही होती है, इसलिए छोटे बच्चों की देखभाल के लिए अल्पविकसित अपरिपक्व बच्चों को जिम्मेदारी सौंप देना सदैव हानिकारक

होता है । बच्चे को प्रारंभ में सहानुभूति समझदारी की जरूरत होती है, कोई अनुभवी व्यक्ति ही ऐसा समझदारी भरा व्यवहार कर सकने में समर्थ होता है । बच्चों की जिज्ञासाएं भी बहुत महत्वपूर्ण होती हैं, उसकी सच्ची जिज्ञासा को समुचित उत्तरों द्वारा शान्त करना आवश्यक होता है, क्योंकि इन उत्तरों के द्वारा ही वे अपनी अनुभूतियों का ठीक ठीक अर्थ समझने का प्रयास करते हैं । यदि उनकी जिज्ञासा की उपेक्षा हुई तो उनकी कुण्ठा पनप जाती है और यदि उत्तर गलत–सलत दिए गए तो निर्दोष बच्चे उन्हें ही यथार्थ समझकर भ्रांतियों के शिकार हो जाते हैं, इसलिए बालक के सही विकास के लिए एक प्रबुद्ध सहयोगी की सतर्क उपस्थिति एवं समीपता सदैव आवश्यक होती है । मनोवैज्ञानिक हरलाक का कहना है कि बच्चे का प्रश्नकाल तीसरे वर्ष से छठवें वर्ष तक पूरे जोर पर होता है । अपने प्रश्नों के उत्तरों के आधार पर बच्चा स्वयं अपने बारे में प्रत्यय बनाता है, उसी प्रत्यय के अनुसार वह दूसरों को समझने का प्रयत्न करता है, साथ ही इन्हीं उत्तरों के आधार पर ही बच्चा दृश्यमान वस्तुओं के आकार तथा स्वरूप के संवेदनात्मक बिम्ब ग्रहण करता है । बच्चे की प्रतिक्रियाएं इन संवेदना–बिम्बों के आधार पर होती हैं ।

अतः व्यक्तित्व निर्माण के इस महत्वपूर्ण कालखण्ड में उसके सहयोगी अभिभावक की भी विशेष भूमिका रहती है । अपरिपक्व मस्तिष्क बच्चे को ऐसा सहयोग देना प्रत्येक अभिभावक का कर्तव्य है ।

अभिभावकों के लिए कुछ स्वर्णित सूत्र :

बचपन की शिक्षा मनुष्य के सारे जीवन की आधारशिला है, जिसका सही संतुलित होना व्यक्ति को महान बना सकता है तो गलत और असंतुलित ढंग से पथ भ्रष्ट करने से लेकर निकम्मा और अकर्मण्य भी बना सकता है । बच्चों का मन–अंतःकरण एक कोरे कागज की तरह होता है, जिस पर जो कुछ लिख दिया जाता है वह मिटकर दुबारा कुछ लिखना एकदम नहीं तो लगभग असंभव अवश्य ही रहता है, लेकिन बहुत कम माता–पिता इस तथ्य को समझते और महत्व देते हैं कि बच्चों को सही ढंग से शिक्षित और संस्कारित करना चाहिए । यह दायित्व बहुत कम अभिभावक ही अनुभव करते हैं कि राष्ट्र और समाज की भावी पीढ़ी के निर्माण की जिम्मेदारी उन्हीं

पर है और उसे सही ढंग से विकसित करना चाहिए ।

बच्चों का जन्म उनके लिए मात्र एक प्रसन्नतादायक उपलब्धि से अधिक नहीं होता और वे बच्चों की किलकारियों से पुलकित होने से अधिक अपना कोई स्वार्थ नहीं समझते, जबकि बच्चे का जन्म एक गंभीर और गुरुतर दायित्व लेकर होता है । उस स्थिति में उनके सामने राष्ट्र को एक सुयोग्य नागरिक प्रदान करने की चुनौती भरा दायित्व मिला होता है, हालांकि इस बात को बहुत से लोग समझते और स्वीकार भी करते हैं कि बच्चों को जन्म भर देना पर्याप्त नहीं है, उन्हें योग्य–स्वावलंबी और सभ्य बनाना भी आवश्यक है, पर यह आवश्यकता किस प्रकार पूरी की जा सकती है, इससे अनभिज्ञ रहने के कारण बात जहां की तहां ही रहती है ।

छोटे बच्चों की उछलकूद बड़ी प्यारी लगती है, उनकी बाल सुलभ शरारतों से मजा भी आता है और कई बार अभिभावक उनकी हरकतों पर प्रसन्नता व पुलक व्यक्त कर उन्हें प्रोत्साहित भी करते हैं । समस्या तब खड़ी होती है जब बाल सुलभ चपलता उद्दण्डता बन जाती है और तोड़फोड़ से लेकर मारपीट करने तक की हरकतें सामने आने लगती हैं । इन हरकतों के कारण माता–पिता परेशान होते हैं तो वे उन्हें डराते–धमकाते और दण्ड देने का रुख अपनाते हैं । ठीक उसी तरह जिस प्रकार कि किसी अपराधी को पुलिस मारती पीटती और डराती धमकाती है । बच्चों को अनुशासन सिखाने के लिए एक सीमा तक डांट फटकार आवश्यक भी है, परंतु परिवारों में बच्चों के साथ जिस प्रकार डांट फटकार की जाती है वह इस सीमा से एकदम बहुत आगे तक की होती है । मारपीट उन्हें भयभीत जरूर कर देती है, परंतु इससे उनका सुधार नहीं हो जाता, वे बागी बन जाते हैं और मां–बाप से छुपकर शैतानियां करने लगते हैं । समझा तो यह जाता है कि मारपीट करने से, डराने–धमकाने से बच्चे सुधर रहे हैं, परंतु वे सुधरते नहीं ढीठ बन जाते हैं । उदाहरण के लिए बच्चा खेलकूद में ज्यादा रुचि लेता है और इस कारण कभी कभी पढ़ाई की भी उपेक्षा करने लगता है तो माता–पिता उसे एक कड़ी डांट पिलाकर हाथ में किताब थमा देते हैं, बच्चा किताब पकड़ भी लेगा, परंतु उसके मस्तिष्क में तो डांट–फटकार का ही असर काम कर रहा है, इसलिए वह किताब पकड़कर इस तरह चुपचाप बैठ जाएगा जैसे

पढ़ रहा है लेकिन वस्तुतः वह पढ़ता नहीं कुछ और ही सोचता रहता है और समय मिलते ही मां-बाप की आंख बचाकर भाग निकलता है ।

यह एक सुनिश्चित तथ्य है कि बच्चों को किसी कार्य में जबरन जोत कर उनमें रुचि उत्पन्न नहीं की जा सकती । किसी बैल या घोड़े को हल या गाड़ी में जोतना हो तो उसके साथ जोर जबरदस्ती की जा सकती है, वहां तो उनकी शारीरिक सामर्थ्य का ही उपयोग करना है । जानवर इन कामों में रुचि ले रहा है अथवा नहीं ले रहा है इससे कोई सरोकार नहीं होता, सरोकार होना भी नहीं चाहिए क्योंकि जानवरों में रुचि का तो कोई प्रश्न ही नहीं उठता, परंतु बच्चों के साथ इस प्रकार जोर जबरदस्ती करना अनुचित ही होगा क्योंकि उनमें रुचि उत्पन्न करके ही उन्हें अभीष्ट दिशा में अग्रसर किया जा सकता है ।

बालकों को कोसने, बार बार उनकी त्रुटियों के लिए कहते रहने की अपेक्षा उन्हें प्रोत्साहन देने की नीति अपनाई जाए तो वह बच्चों में अपनी समस्याओं के प्रति आत्म विश्वास जगाती है तथा उन्हें उन गुणों को अर्जित करने के लिए भी प्रेरित करती है जो उनमें वस्तुतः नहीं होते ।

बच्चों को सुयोग्य बनाने के लिए ये कुछ मोटी मोटी बातें हैं जिनका ध्यान अभिभावकों को रखना चाहिए । स्मरण रखा जाना चाहिए कि बच्चे केवल मनोविनोद या पुलक प्राप्त करने के लिए ही नहीं होते । उनका जन्म माता-पिता के लिए गंभीर उत्तरदायित्वों को साथ लिए होता है, इसके साथ ही बच्चों के लिए धन संपत्ति जमा कर देने और उनके भविष्य के लिए सुरक्षा का आधार बना देने भर से ही अपने कर्तव्यों की पूर्ति नहीं हो जाती बल्कि उन्हें सुयोग्य बनने के मार्ग पर लाने, लाकर आगे बढ़ाने से ही उनके प्रति अपनी जिम्मेदारियों को भली भांति निभाने का संतोष किया जा सकता है । बच्चों के शासक या संरक्षक बनने भर की इच्छा अभिभावकों को नहीं रखनी चाहिए । व्यक्तित्व विकास की इस बुनियादी अवस्था में उन्हे पग-पग पर सहायक की भी भूमिका निभानी आवश्यक है ।

मुद्रक : युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा